प्रकाशक :
ज्योति प्रकाशन मंदिर
१/४७६६, लेन नं० १२, बलबीर नगर विस्तार
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

वितरक :
हिन्दी बुक सेण्टर
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

मूल्य : पचहत्तर रुपये

मुद्रक :
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
ए-४५ नरायना, औद्योगिक क्षेत्र,
भाग-२, नई दिल्ली-११००२८

Rajasthan Aur Nehru Pariwar : Jhabarmall Sharma, Rs. 75-00

खेतड़ी के दीवान पं० नन्दलाल नेहरू (पं० मोतीलाल नेहरू के अग्रज)
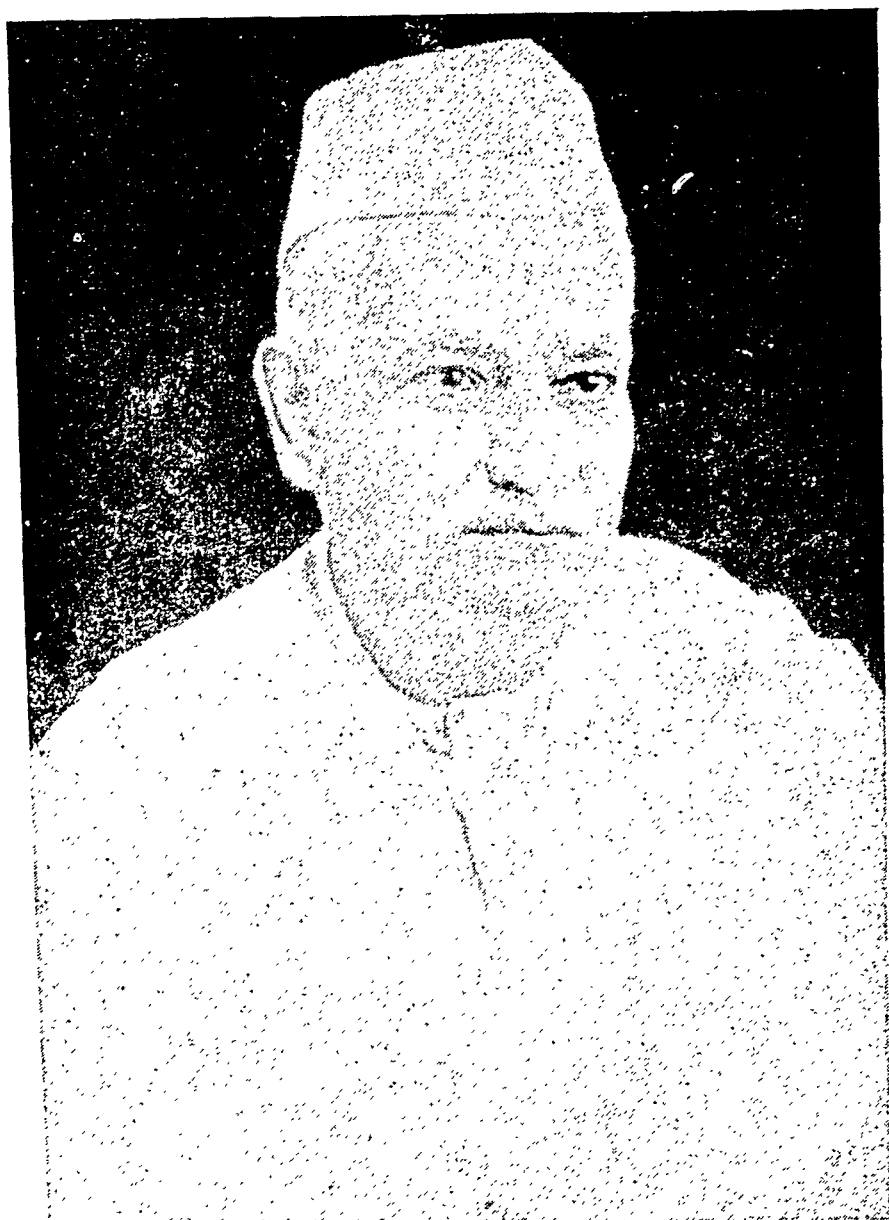
पण्डित मोतीलाल नेहरू

१. भारत का हृदय-प्रदेश

राजस्थान भारत का हृदय प्रदेश है। ३,४१,७३२ वर्ग किलोमीटर में विस्तृत, ३१,७०४ ग्रामों और १४५ नगरों तथा कस्बों को अपने अंचल में स्थान देने वाला यह प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से आज भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। भारत के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का १०.४ प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान का भू-भाग है, किन्तु यहां की ढाई करोड़ जनसंख्या देश की समग्र जनसंख्या का केवल ४.०६ प्रतिशत ही बनाती है।

भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान को 'भारत का रेगिस्तानी राज्य' कहा जाता है। भारत के विशाल मरुस्थल, थार, का विस्तार इसके समूचे उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र में है जहां मीलों तक जल और वनस्पति का अभाव है। इस भू-भाग को दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्र से विलग करती है अरावली की पर्वतमाला, जिसे संसार की प्राचीनतम गिरि-शृंखलाओं में माना गया है। उत्तर और पश्चिम के सूखे बालुकामय बीहड़ के विपरीत पूर्व और दक्षिण के क्षेत्र में हरी-भरी पहाड़ियां हैं, सरस घाटियां और समतल मैदान हैं और चम्बल तथा बनास जैसी विशाल नदियां भी बहती हैं।

राजस्थान के वैदिक भूगोल ने इस प्रदेश के गौरवशाली इतिहास का निर्माण किया है, यहां के निवासियों को उनकी अपनी विशिष्ट परम्परायें दी हैं और एक ऐसी कलात्मक सांस्कृतिक विरासत का विकास किया है जो भारत की महान संस्कृति का अभिन्न और अविभाज्य अंग होते हुये भी अपने आप में अनूठी और अपूर्व है।

राजस्थान की धरती वीर-प्रसू जानी गई है। यहां के वीरों और

वीरांगनाओं के शौर्य और वलिदान की गाथाओं ने सारे भारत को प्रेरणा दी है। किन्तु राजस्थान की परम्परायें वीरता और शौर्य तक ही नहीं हैं। इस पुनीत धरती पर अपने प्राण हथेली पर लिये चलने वाले पृथ्वीराज-सांगा, प्रताप और राजसिंह जैसे नरपुंगव तथा हंसते-हंसते धधकती चिता का आलिगन करने वाली पद्मिनी जैसी सन्नारियां ही नहीं, भक्त शिरोमणि गिरिधर गोपाल गुण गायिका मीरा जैसी साध्वी और अनेक सन्त भी अवतरित हुये। माघ जैसे महाकवि और भारत के घोर अन्धकारपूर्ण युग को चमत्कृत करने वाले सवाई जयसिंह जैसे ज्योतिषी और वैज्ञानिक तक को इस धरती ने जन्म दिया था। अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट के एकमात्र प्रतिरोधक महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह को अपने स्वयं के पुत्र की वलि देकर जीवन-रक्षा करने वाली पन्ना धाय राजस्थान की ही बेटी थी। वीरता और पराक्रम की यशगाथायें अन्यत्र भी मिल जायेंगी, किन्तु ऐसा त्याग, ऐसा उत्सर्ग कहां मिलेगा जो पन्ना धाय ने किया था !

पुरातत्ववेत्ताओं ने राजस्थान का अतीत आरंभिक पाषाणयुग तक खोज निकाला है। यह कल्पना मात्र ही रोमांचक है कि राजस्थान की पर्वतीय उपत्यकाओं में जैसे आज लोग अपनी दिनचर्या में तल्लीन हैं, पचास हजार वर्षों से पूर्व भी यहां के मूल निवासी अपने दैनिक कार्य-कलाप में वैसे ही व्यस्त रहते थे। अरावली की विभिन्न नदी-घाटियों में आज के उपेक्षित और विस्मृत स्थलों से उत्खनन द्वारा जो पत्थर के औजार और अन्य उपकरण प्राप्त हुये हैं, वे इस प्रदेश के पुरातन जीवन के पुष्ट प्रमाण हैं।

राजस्थान के उत्तर में जहां आज घग्घर या "नाली" वहती है, कभी महान् सरस्वती प्रवाहित होती थी। इस क्षेत्र में हड़प्पा युग से लेकर मौर्य और गुप्त-काल तक विभिन्न प्राचीन संस्कृतियों का संगम होता रहा। इस महासरिता के तटवर्ती स्थानों पर पुरातत्व-वेत्ताओं ने ऐसे अवशेष खोज निकाले हैं जो मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृति के ही विस्तार हैं। यह निर्विवाद रूप से माना जाने लगा है कि सरस्वती घाटी और सिन्धु घाटी की सभ्यताओं में गहरा सम्बन्ध रहा था।

पं० मोतीलाल नेहरू (लेखक के सौजन्य से)

खेतड़ी में नन्दलाल जी का निवास स्थान दीवानखाना
यह स्थान अब विवेकानन्द स्मृति मन्दिर (रामकृष्ण मिशन) बना दिया है।

पं० गंगाधर नेहरू, पं० मोतीलाल नेहरू के पिता

पं० वंशीधर नेहरू (पं० मोतीलाल नेहरू के अग्रज)

विषय-सूची

चित्र-सूची

(भाग–क)

(भाग–ख)

देवी जी का तो यह पितृगृह समान ही रहा। श्रीमती इन्दिरा गांधी भी राजस्थान की समस्याओं और इस प्रान्त के विकास में पूर्ण रुचि लेती रही हैं। उनके मन में अपने बचपन का कुछ समय राजस्थान में बिताने की यादें बनी हुई हैं। प्रायः इन सभी बातों की चर्चा इस पुस्तक में हुई है जो भारत के इस बड़े परिवार के मुख्य व्यक्तियों की जीवन घटनाओं पर प्रकाश डालने वाली हैं।

पुस्तक के संकलन में मेरे द्वारा शेखावाटी के इतिहासानुसन्धान क्रम में एकत्रित सामग्री के अतिरिक्त स्वर्गीय मुंशी जगमोहनलाल जी से भी अनेक सूचनाएं प्राप्त हुई। मैं उस दिवंगत आत्मा के लिए शांति प्रार्थी हूं।

इस पुस्तक को लिखने में मेरे निकटस्थ सुहृद श्री नंदकिशोरजी पारीक 'नागरिक' ने अन्यान्य आवश्यक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी मेरी पूर्ण सहायता की है। मैं उन्हें हृदय से आशीर्वाद देते हुए उनका आभार मानता हूं।

सुहृद्वर पं० गोपाल नारायणजी बहुरा के साथ सतत चर्चाएं इस पुस्तिका के लेखन में मेरा सम्बल रही हैं। मैं हृदय से उनको आशीर्वाद ज्ञापित करता हूं। राजस्थान के वरिष्ठ प्रशासक श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी आई० ए० एस० (संप्रति भारत सरकार के गृह सचिव) ने भी पुस्तक की पांडुलिपि को देखकर कुछ अमूल्य सुझाव दिये थे। मैं उनके प्रति भी अभार व्यक्त करता हूं और उनकी निरन्तर उन्नति की कामना करता हूं।

भारत के प्रधान मन्त्री ने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक का विधिवत् विमोचन करने की कृपा की है तदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ-भाव ज्ञापन करता हूं।

श्री महेन्द्र देव ने अनुक्रमणिका तैयार की इसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूं। तथा सुन्दर मुद्रण के लिये हिन्दी भक्त श्यामसुन्दर गर्ग का भी धन्यवाद करता हूं।

झाबरमल्ल शर्मा

कृति वन्दन

साहित्य वाचस्पति पं० झाबरमल्ल शर्मा हिन्दी की ऐसी अशेप विभूति हैं जिनके कृतित्व का गौरव आधुनिक पीढ़ी के साहित्यकारों एवं पत्रकारों के लिए प्रेरणा का जीवन्त और जाग्रत सम्वल है। इस मनीषी ने द्विवेदी युग के महान साहित्यकारों, पत्रकारों, इतिहासकारों एवं युग विधायकों के बीच रहकर अपने ढंग का मौलिक अवदान हिन्दी जगत को दिया है। उनकी सहज लेखनी का अनवरत प्रसाद लगभग ८१ वर्ष से लोक और समाज को मिल रहा है। जिसके माध्यम से नवीन आर्जन और नई दिशा तथा ज्ञान का तत्वबोध होता है। उनकी तत्वाभिन्वेषी लेखनी से प्रस्तुत विवेकानन्द के जीवन्त आदर्श, भारतीय देशभक्तों की कारावास कहानी, राजस्थान की वीर गाथाएं और सीकर तथा खेतड़ी के अंचलों का प्रामाणिक इतिहास और विश्लेषण हिन्दी जगत के लिए स्थायी महत्व का है। उन्होंने एक अपूर्व ज्ञान मंडित संग्रहालय की भी स्थापना की जिसमें उनके युग के मान्य साहित्य मनीषियों की कृतियों का संकलन और उनके युग की पत्र-पत्रिकाओं की अमूल्य राशि तो है ही विलुप्त ज्ञान की अनेक बहुमूल्य पाण्डुलिपियों का संग्रह भी है। इस सबके पीछे उनका एक संकल्प है और वह यह है कि ज्ञान की दीपशिखा चिरन्तन उठती रहे और साहित्य व्यवसाय नहीं अपितु जीवन की साधना का आधार बने।

जो लोग साहित्य को समाज से जोड़ते नहीं और अपने युग के मूल्यों का बोध उसमें प्रतिष्ठित नहीं करते उनका अवदान उस मान का अधि-

कारी नहीं होता जिससे कीर्ति के ऐसे स्तम्भ का निर्माण हो जिससे ज्ञानी अपनी दीप-शिखा प्रज्ज्वलित कर सकें। उनकी साधना के भीतर इस भावना का सदा से स्नेह रहा है। ज्ञानोदय, साप्ताहिक भारत, कलकत्ता समाचार, हिन्दू संसार, जैसी ऐतिहासिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी उन्होंने देश और समाज को जगाने का सतत प्रयत्न किया और आज लगभग ९६ वर्ष की आयु में वे काल को जीतने के लिए अपनी लेखनी से ऐसे साहित्य का निर्माण कर रहे हैं जिससे उनका देशकाल तो उजागर होता ही है, जिस भूमि से उनका सम्बन्ध रहा है, उसके कृतित्व का बोध केवल स्थानीय लोगों को नहीं, भावी पीढ़ी को भी प्रेरणाप्रद ढंग से करा रहे हैं। वे लौकिकता को अलौकिक और स्थानिकता को सार्वभौमता प्रदान कर रहे हैं।'

राजस्थान मध्यकाल के इतिहास की लीलाभूमि रही है। वह शस्त्र और शास्त्र, चरित्र और चेतना दोनों की प्रेरणा भूमि रही है। न केवल मध्यकाल में उनसे अपने त्याग और कर्म के द्वारा भारत के इतिहास की रचना में योगदान दिया अपितु आधुनिक भारत की रचना में भी उसकी सृष्टि का बोध लोगों को हो सके इसके लिए वे सचेष्ट हैं।

एक ओर जहां वहां वे महान साहित्यकार और साथी पं० चन्द्रधरशर्मा गुलेरी की जीवनगाथा प्रस्तुत कर रहे हैं, वहीं नेहरू परिवार के वरदानी कृतित्व का आकलन कर ऐसे साहित्य की सृष्टि कर रहे हैं जो इतिहास के लुप्त पृष्ठों को पुनः उपस्थित कर रहा है। साक्ष्यों से प्रामाणिकता उनकी लेखनी का सदा से आधार रहा है।

आधुनिक भारत की रचना में अगर किसी परिवार का सर्वाधिक हाथ है तो वह नेहरू परिवार का। यह परिवार अपनी उन्मुक्त मौलिकता में भी राष्ट्रीयता के ऐसे बन्धन में बंधा है जो परम्परा में नव आर्जव जोड़ भविष्य को आलोक देता है। यह परिवार सदैव लोक के लिए विष-पायी रहा है और जनमानस के लिए अमृत की खोज करने के लिए सदैव सेवा और समर्पण के भाव से साहसपूर्वक इसी प्रकार उत्सर्ग करता आया है

जिस प्रकार राजस्थान के आदर्श चरित्रों ने मध्यकाल में किया था। प्रत्येक स्थिति और परिस्थिति में इस परिवार ने राष्ट्रीयता की दीपशिखा को न वुझने देने का संकल्प अपनी आत्माहुति के द्वारा प्रज्ज्वलित और प्रकाशित किया है। भविष्य का बोझ वर्तमान से वड़ा होता है। यह परिवार भविष्य द्रष्टा और आगम का विधायक भी रहा है। इसलिए इस परिवार के लोग देश में आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं और ऐसी आस्था इस परिवार में लोगों की होती है जैसी आस्था इतिहास के पृष्ठों में समवेत जनमानस ने शायद ही कभी किया हो।

इस परिवार का सम्बन्ध कश्मीर, दिल्ली और उत्तर प्रदेश आदि से जग-जाहिर है किन्तु राजस्थान की भूमि से भी इस कुल के लोक वन्दित महापुरुष पं० मोतीलाल, जवाहरलाल जी और श्रीमती इन्दिरा गांधी का अटूट सम्बन्ध रहा है। जवाहरलाल जी की पत्नी कमला नेहरू जी का वह नैहर रहा है। यह बात जनमानस को पता नहीं है। मोतीलाल जी का बचपन व प्रारम्भिक शिक्षा खेतड़ी में हुई और खेतड़ी की कर्मभूमि से वे उजागर हुए। वीर प्रसूता राजस्थानी दूध मोतीलाल जी की रगों में था जो नेहरुओं के स्वाभिमान स्वतन्त्रता, उत्सर्ग और संरचना की कहानी की ऊर्जा के रूप में वन्दित और प्रतिष्ठित है। यह पक्ष विलुप्त-सा था क्योंकि १८५७ की महाक्रान्ति में नेहरू परिवार से सम्बद्ध कागज-पत्र लुप्त हो गये थे। उस सम्बन्ध की खोई कड़ी को पूज्य शर्मा जी ने प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें आधुनिक इतिहास के ज्ञानी इतिहासकारों को भी ऐसी सामग्री मिलेगी जिसका मान परम महत्व का होगा।

इस पुस्तक में पं० झावरमल्ल जी ने नेहरू परिवार का राजस्थान से क्या सम्बन्ध रहा है, मोतीलाल जी से लेकर इन्दिरा जी तक का इससे क्या नाता-रिश्ता रहा है, बताया है। यद्यपि नेहरू परिवार सारे देश का और अनेक अर्थों में पीड़ित मानव का है तो भी सबका होने के लिए किन सोपानों ने इन्हें रास्ता दिया है, उनका भी इसमें बोध होता है। ऐसी महिमामयी कृति का जिसका आज के भारत के इतिहास में अपने गुण धर्म के कारण

मान होगा और सनातन मान होगा, स्वागत है। पं० झाबरमल्ल जी ने इसे प्रस्तुत किया है उससे हमारा गौरव बढ़ा है और हिन्दी का गौरव बढ़ा है क्योंकि हिन्दी में यदि ऐसी मौलिक ज्ञानदा कृतियां आयेंगी तो और भाषाओं के लोग उसे ग्रहण करेंगे। इस आयु में ऐसा काम करते जाना साधारण नहीं है, असाधारण साधना का और जीवनी शक्ति का प्रतीक है।

पूरी पुस्तक मैं पढ़ गया हूं, लगता है जैसे उपन्यास हो। न कहीं भटकाव है, न जटिलता। सर्वत्र गंगा की तरह सहज निर्मल प्रवाह की शैली में वे नूतन प्रमाण सिद्ध बात कहते चले जाते हैं। ऐसा वे इसलिए कह पाते हैं कि उनके पास कहने के लिए बातें हैं। हमें विशेष प्रसन्नता इसलिए होती है कि शर्मा जी हमारे हैं और नागरीप्रचारिणी सभा से उनका नाता-रिश्ता उनके शैशव काल से है और आज भी बना हुआ है। उसकी रचना में उनका योगदान भी रहा है। यह सब उन्होंने निस्पृह भाव से किया है। वे राजस्थान के मनीषी और सच्चे अर्थ में ब्राह्मण हैं जिनका तेज केवल लोकमंगल के लिए है और ज्ञानदान के लिए उनका जीवन है। उनकी केवल एक ही अभिलाषा शेष है कि मोतीलाल नेहरू स्मारक उनके जीवन-काल में मूर्तित हो सके ताकि खेतड़ी का मान बढ़े। अपने जन्मस्थान के प्रति ऐसा स्नेह विरल लोगों में ही होता है। मैं उनके पौत्र श्यामसुन्दर शर्मा जी को इसलिए बधाई दे रहा हूं कि अपने पूज्य पितामह के संकल्पों की पूर्ति में वे बिना किसी स्वार्थ के लगे हुए हैं और जो अपने पितामह की कीर्ति की रक्षा कर उसे उजागर नहीं कर सकता उस सन्तान का मान भारत नहीं करता। यह इस देश की पुरानी परिपाटी है। वैसे मैं पूज्य पण्डित जी से बहुत छोटा हूं परन्तु काशी का ब्राह्मण होने के नाते उन्हें आशीर्वाद देता हूं और भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूं कि शर्मा जी १०० वर्ष से भी अधिक जियें और स्मारक से लेकर हिन्दी के फलने-फूलने तक की कामना वे अपनी आंखों से पूरी होते देखें तथा हमें आशीर्वाद देते रहें कि जिस रास्ते से चलकर साहित्य, समाज और देश का भला हो सके उस पर भावी पीढ़ी चल सके।

इस यशस्वी ग्रंथ के लेखन के लिए पूज्य शर्मा जी के चरणों में हिन्दी जगत का प्रमाण निवेदित करता हूं और यह आशा करता हूं कि लोग उनसे प्रेरणा ग्रहण कर नये आर्जव से साहित्य और संस्कृति तथा ज्ञान की सेवा का लोक-मंगल मूलक व्रत लेंगे।

१५ अगस्त, १९८१
रक्षा बन्धन, २०३८, सं०

सुधाकर पाण्डेय
प्रधानमंत्री : नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी

समर्पण

जाति-धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक भारत के निर्माण के लिए,
सभी भाषा-भाषियों के साथ मिल-जुल कर देश की
स्वतंत्रता के लिए मातृ-भूमि की बलिवेदी पर
आत्मोत्सर्ग करने वाले देश-भक्तों
की पुण्य स्मृति में यह ग्रन्थ
सादर समर्पित है।

— झावरमल्ल शर्मा

प्रधान मंत्री
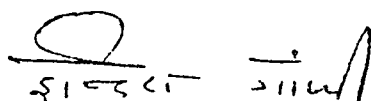
सन्देश

राजस्थान अपनी विशिष्ट संस्कृति और गौरवपूर्ण इतिहास के लिए प्रसिद्ध है। हमारे इतिहास में राजस्थान की कहानियां किसने नहीं सुनी।

मेरे दादाजी पं० मोती लाल नेहरू का पालन राजस्थान के खेतड़ी नामक स्थान में हुआ। मेरे ननिहाल के रिश्तेदार जयपुर में थे इसी कारण मेरी मां श्रीमती कमला नेहरू बचपन में कुछ बरसे वहां रहीं। इन सभी को वहां घूमने का मौका मिला। मैंने अपने माता-पिता के साथ और अकेले भी दौरा किया। राजस्थान के अलग-अलग हिस्सों की बहुत सी यादें हैं।

राजस्थान हिन्दुओं, जैनियों और मुसलमानों के प्रसिद्ध धार्मिक स्थानों और रंगबिरंगी वेशभूषाओं की भूमि रहा है। यहां की कला परम्परायें बड़ी समृद्ध हैं। उनमें से हस्तकला और लोकनृत्य का अपना ही स्थान है, जिसकी अपने देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी सराहना की जाती है।

मुझे खुशी है कि पं० झाबरमल शर्मा द्वारा लिखित "राजस्थान और नेहरू परिवार" पुस्तक का विमोचन किया जा रहा है। इस अवसर पर मेरी शुभकामनायें।

(इन्दिरा गांधी)

नई दिल्ली
26 मार्च, 1981

ग्रंथ और ग्रंथकार

राजस्थान के गौरवमय इतिहास से भारत का जन-जन सुपरिचित है। पृथ्वीराज, प्रताप और दुर्गादास जैसे रणबांकुरे, राणा कुम्भा, सांगा, राजसिंह और मानसिंह जैसे रण-नीति कुशल, हम्मीर जैसे हठी, मीरां जैसे भक्त और गायक, शक्तावतों-चूंडावतों जैसे स्वामिभक्त सामन्त, पन्ना जैसी त्याग की प्रतिमा, भामाशाह जैसे समय पर काम आने वाले दानवीर और माघ, हरिभद्रसूरि, हरिद्विज, चंद, पृथ्वीराज, कुंभकर्ण जैसे कुशल कवि जिस भूमि में उत्पन्न हुए हैं उसकी गौरव गाथायें किस निष्पक्ष इतिहासकार को वलात् आकृष्ट नहीं करतीं। कर्नल टाड जैसा विदेशी इतिहासकार इतना अभिभूत हुआ कि इसके गौरवमय इतिहास को लिपिबद्ध कर स्वयं भी अमर हो गया। उसके इतिहास से प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी और वंगला के पता नहीं कितने साहित्यकारों ने राजस्थानी इतिहास की गरिमामय घटनाओं और कथाओं को उपजीव्य वना कर अपनी लेखनी का कौशल दिखाने में सफलता प्राप्त की। रंगमहल, काली वंगां और पीली वंगां के अवशेष आज भी राजस्थान की संस्कृति की प्राचीनता को हरप्पा, मोहें जोदरो की सभ्यता के काल से भी प्राचीनतर काल में ले जाते हैं। अनेक किलों-दुर्गों के भग्नावशेष और दिलवाड़ा के मन्दिरों जैसे स्थापत्य के अद्भुत नमूने आज भी राजस्थान को स्थापत्य के मानचित्र में केन्द्रीय स्थान का अधिकारी वनाते हैं। जयपुर, बूंदी, किशनगढ़, आदि की समृद्ध चित्र शैलियां राजस्थान के चित्र कला के इतिहास को गौरवान्वित करती हैं। सार यह कि मानवी सभ्यता और संस्कृति का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें राजस्थान भारत के अन्य प्रान्तों के लिए सुपरिचित न हो।

भारत में नेहरू परिवार की गौरव गाथा भी अल्प परिचित नहीं है।

पं० मोतीलाल अपने समय के वरिष्ठतम विधिवेत्ताओं में तो थे ही, स्वतंत्रता संग्राम में भी उनका योगदान अग्रणी था। उन्हें दो वार कांग्रेस अध्यक्ष वना कर स्वतन्त्रता संग्राम के महारथियों ने उनके अपूर्व योगदान को ही स्वीकृति दी थी। उनके पुत्र जवाहर लाल का योगदान तो और भी अपूर्व रहा। वे भी कांग्रेस के एकाधिक वार अध्यक्ष रहे। स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी योद्धा रहने के वाद स्वतन्त्र भारत के स्वस्थ निर्माण का दायित्व भी उनके ही वलिष्ठ कंधों पर आया था। जवाहरलाल के निधन के वाद पुनः उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री के पद पर आसीन हैं।

इस तथ्य से वहुत कम लोग परिचित हैं कि नेहरू परिवार का राजस्थान से कितना घनिष्ठ सम्वन्ध रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ में उसी घनिष्ठ सम्वन्ध का प्रतिपादन है। नेहरू परिवार के अग्रणी मोतीलाल जी इलाहावाद के उच्च न्यायालय के प्रमुख अधिवक्ता थे। उत्तर प्रदेश ही मुख्यतः उनकी कर्मभूमि रहा। अतः सामान्यतः इस वात की ओर वहुत कम लोगों का ध्यान गया है कि उनका राजस्थान से भी उतना ही घनिष्ठ सम्वन्ध था। इस पुस्तक से यह विदित होगा कि मोतीलाल जी उत्पन्न तो आगरा में हुए थे पर उनका लालन-पालन और प्रारम्भिक अध्ययन राजस्थान में ही हुआ। उनके वड़े भाई नन्दलाल जी खेतड़ी के दीवान थे। एक वर्ष का पितृहीन वालक मोतीलाल अपनी माता जियोरानी के साथ अपने वड़े भाई के पास खेतड़ी आ गया था। वहीं उसका लालन-पालन हुआ। राजस्थानी धाय का दूध पीकर ही उसमें कदाचित् वह तेजमिजाजी आई जो अन्य भाइयों वंशीधर, नन्दलाल आदि में नहीं थी। खेतड़ी की मिट्टी में खेल-कूद कर और वहीं दस वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त कर वड़े हुए मोतीलाल नेहरू ने खेतड़ी को नहीं भुलाया। उन्हें वीनकार, वाजीगर या पहलवान की जरूरत हुई तो खेतड़ी से मंगवाया, पुत्र जवाहर लाल के लिए घोड़े की जरूरत हुई तो वहां से आया; पुत्र की जन्मपत्री वनवाई तो खेतड़ी के राज ज्योतिषी से। मोतीलाल की पहली विदेश यात्रा खेतड़ी के वकील के रूप में ही हुई थी और वे इंगलैंड में वैठे भी अकाल पीड़ित खेतड़ी की जनता का ध्यान नहीं भूले थे।

नेहरू परिवार की राजस्थान के प्रति यह आत्मीयता मोतीलाल जी

के साथ समाप्त नहीं हो गई। देशी राज्य प्रजामंडल के अध्यक्ष के नाते राजस्थान जवाहर लाल की कर्मभूमि भी बना। जवाहर लाल चाहे पिलानी के छात्रों को सम्बोधित कर रहे हों, चाहे वनस्थली की बालिकाओं को, चाहे जयपुर के विशाल राजनीतिक मंच से भाषण कर रहे हों, चाहे पंचायतराज का उद्घाटन करते हुए किसानों को सम्बोधित कर रहे हों, उनकी राजस्थान के प्रति आत्मीयता कभी कम होते नहीं देखी गई।

जवाहर लाल जी की पत्नी कमला जी तो थीं ही जयपुर की। जयपुर के अटल हाउस में ही वे पलीं और बढ़ीं। पर्दे के वातावरण से मुक्ति पाने के लिए पुरुषों का वेष बनाकर वहां के बाजारों में भी वे घूमीं। अतः राजस्थान के प्रति अपनी आत्मीयता को वे जीवन भर भी क्या भूल पाई होंगी। इन्दिरा जी चाहे राजस्थान में कम रही हों पर आखिर वहां उनका ननिहाल था। अन्य घटनाओं को वे चाहे भूल जाएं पर वनस्थली के रास्ते में जंगल में भूमि पर लेट कर रात काटने की बात वे शायद ही भूल पाएं।

पर नेहरू परिवार और राजस्थान के इस सम्बन्ध से बहुत कम लोग परिचित रहे हैं। द्विवेदी काल के अग्रणी साहित्यकार, प्रतिष्ठित पत्रकार और तथ्यान्वेषी इतिहासकार साहित्यवाचस्पति पं० झाबरमल्ल शर्मा ने इस पुस्तक के माध्यम से इस विषय पर प्रकाश डाल कर अनेक अज्ञात या अल्पज्ञात तथ्य प्रकाशित किए हैं। शर्मा जी का मूल निवास स्थान तो खेतड़ी है ही पर उनकी इस दिशा में रुचि के दो विशेष कारण रहे हैं। एक तो वे स्वयं स्वतन्त्रता सेनानी रहे हैं और पत्रकार के नाते देश में स्वतन्त्रता का शंखनाद फूंकने में सहयोगी रहे हैं अतः ऐसे परिवार से सम्पर्क होना उनके लिए स्वाभाविक था। दूसरे इतिहासानुसंधान के क्रम में उन्हें खेतड़ी की राजकुमारी से ऐसी बहुविध सामग्री उपलब्ध हुई जो नन्दलाल जी और मोतीलाल जी के खेतड़ी से रहे सम्बन्धों पर भरपूर प्रकाश डालती थी। उसका समुचित उपयोग करने की उनकी अपनी कामना तो थी ही स्वर्गीय जवाहर लाल जी की भी ऐसी इच्छा थी कि इस पर प्रकाश डाला जाए। उसी का परिणाम प्रस्तुत पुस्तक है।

ग्रंथकार पत्रकारिता क्षेत्र के भीष्मपितामह हैं। आज से अस्सी वर्ष पूर्व उन्होंने पत्रकार के रूप में कार्य का आरम्भ किया था। क्षेत्र भी चुना

था कलकत्ता जो उस समय भारत की राजधानी था और हिन्दी पत्रकारिता में अग्रणी था। पंडित जी ने वहां "कलकत्ता समाचार" का संपादन किया। जिन्होंने इनके सम्पादन में निकली कलकत्ता समाचार की फाइलें देखी हैं वे इस बात को देखकर चकित हुए हैं कि दमन के उस युग में भी पंडित जी जैसे निर्भीक सम्पादक उपलब्ध थे। "रौलट एक्ट" के विरुद्ध कलकत्ता समाचार ने जो आवाज बुलन्द की थी उसी का परिणाम था कि उन्हें गवर्नर से धमकी मिली थी और 'गवर्नर का गुस्सा' लेख के बाद तो उन्हें पत्र बन्द करना ही पड़ा था।

"कलकत्ता समाचार" बन्द हुआ पर वह "हिन्दू संसार" नाम से दिल्ली से प्रकाशित होने लगा। निर्भीकता और तथ्यकथन के फलस्वरूप "हिन्दू-संसार" को भी कष्ट के दिन देखने पड़े थे और मानहानि का मुकद्मा तक झेलना पड़ा था पर पंडितजी ने अपना दायित्व छोड़ना उचित नहीं समझा था।

कलकत्ता समाचार और हिन्दू संसार नामक दैनिक पत्रों के सम्पादन के अतिरिक्त १. भारत और २. मारवाडी नामक साप्ताहिक पत्रों और १. ज्ञानोदय, २. मारवाड़ी बंधु, ३. अग्रवाल नामक मासिक पत्रिकाओं का सम्पादन भी पंडितजी की पत्रकारिता के क्षेत्र को देन है।

परन्तु पंडितजी का अवदान पत्रकारिता के क्षेत्र तक सीमित नहीं है। जहां पत्रकार का स्वभाव अनेक विध पल्लवग्राही पांडित्य का होता है वहां पंडितजी की मूलग्राही प्रवृत्ति थी और उसके उदाहरण हैं उनके इतिहास विषयक ग्रंथ। उन्होंने शेखावाटी के इतिहास का पूर्ण प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया था। सीकर और खेतड़ी के इतिहास तो प्रकाशित भी बहुत पहले हो चुके थे। पर शेखावाटी क्षेत्र के शेष इतिहास की सामग्री अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। लगभग पिचानवे वर्ष की अवस्था में पहुंच कर भी पंडितजी पूर्ण दृढ़ता के साथ कहते हैं कि यह सम्पूर्ण सामग्री भी मेरे जीवनकाल में प्रकाशित होकर रहेगी। राजस्थान क्षेत्र की राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, सभ्यता आदि का जैसा तथ्यात्मक विवरण पंडितजी की रचनाओं में मिलता है वैसा बहुत कम इतिहास ग्रंथों में मिलेगा। इस क्षेत्र के शिलालेखों, वीरों, देवी-देवताओं, साहित्य-

कारों, आदि का जैसा वैदुष्यपूर्ण विवरण पंडितजी के लेखों में मिलेगा वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी पंडितजी का अवदान अपूर्व है। वे द्विवेदी काल के अग्रणी गद्य लेखक तो हैं ही उन्होंने राष्ट्रीय नेताओं के प्रति पद्यात्मक भावनाएं भी सफलतापूर्वक व्यक्त की हैं। गद्य रचनाओं में १. श्री अरविंदचरित, २. हिन्दी गीता रहस्य-सार, ३. आत्मविज्ञान शिक्षा, ४. खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द तथा ५. आदर्श नरेश आदि प्रमुख हैं तो पद्य में तिलकगाथा, गांधी गुणानुवाद आदि रचनाएं।

पंडितजी ने अनेक लेखकों और विद्वानों को सहयोग देकर प्रोत्साहित किया है तो दूसरी ओर अनेक भूले-बिसरे लेखकों को पुनः प्रकाश में लाकर साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह भी किया है जिसे वे श्राद्ध मानते हैं। उनके पहले कोटि के कामों में हम निम्नलिखित ग्रंथों के भूमिका लेखन को ले सकते हैं :—

१. योरप का महायुद्ध (लेखक दुर्गा प्रसाद)
२. भारतीय दर्शनशास्त्र (लेखक माधव प्रसाद मिश्र)
३. पंचायत (लेखक आदित्य प्रसाद सिंह)
४. केडिया जाति का इतिहास (लेखक गुरमुख राय)
५. श्रीमद्रामरसामृत

दूसरी श्रेणी में उनके निम्नलिखित संपादित ग्रंथ हैं :—

१. माधव मिश्र निबंध माला
२. बाल मुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ
३. गुप्त निबंधावलि
४. अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थी
५. केसरी सिंह समर (हरिनाम शांडिल्य कृत)
६. भारतीय देश भक्तों के कारावास की कहानी
(उमादत्त शर्मा द्वारा संकलित)

पंडित जी जीवन भर साहित्यकारों को प्रकाश में लाने का पुण्य कार्य

करते रहे हैं। स्वयं गत ८० वर्षों से हिन्दी के अनेक क्षेत्रों में लिखते रहे हैं। आज भी उनका सम्पादित गुलेरी गरिमाग्रंथ नागरी प्रचारणी सभा में मुद्रणाधीन है। पर यह हिन्दी का दुर्भाग्य था कि लोग पण्डितजी के अवदान को भुलाने लगे थे। यह हर्ष की बात है कि पिछले पांच-सात वर्षों में पंडित जी की ओर अनेक संस्थाओं तथा व्यक्तियों का ध्यान पुनः गया है। इसके परिणामस्वरूप १९७७ में दिल्ली में राजस्थान मंच द्वारा और जयपुर में श्री युगल किशोर चतुर्वेदी के सम्पादन में पण्डितजी को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किए गए। उसी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी उन्हें साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित कर अपने को गौरवान्वित किया। इस वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार ने उनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर उन्हें वरिष्ठ-तम साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया तो उदयपुर से महाराणा कुम्भा इतिहास पुरस्कार से।

पण्डित जी न तो रंचमात्र भी धनलिप्सु हैं और न कीर्तिकामी। अपनी प्रशंसा सुनकर उन्हें बहुत संकोच होता है। पर समाज का तो कर्त्तव्य है ही कि इस ऋषि के प्रति अपनी सुमनांजलि अर्पित करता रहे।

प्रस्तुत पुस्तक पंडित जी की एक और महत्वपूर्ण कृति है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होने की पूर्ण आशा है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी छप रहा है जिससे हिन्दी न जानने वाले अंग्रेजीविद् भी पंडित जी की गम्भीर विवेचन शैली से परिचत हो सकेंगे।

अस्सी वर्षों से हिन्दी की सतत सेवा कर रहे विद्वान की यह कृति पूण सम्मान पाएगी इसमें संदेह के लिए कोई अवकाश नहीं है।

मैं हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के स्वामी श्री श्यामसुन्दर गर्ग को भी धन्यवाद देना भूल नहीं सकता जिन्होंने इस कार्य को पूर्णरूपेण सुन्दर तथा समय पर छापने में अपना योगदान दिया है।

—वियोगी हरि

दो शब्द

आज 'राजस्थान और नेहरू परिवार' पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है। यह मेरे 'शेखावाटी इतिहास' के अन्वेषण कार्य का ही सुफल है। स्वामी विवेकानन्द जी के प्रमुख सहायक स्तम्भ खेतड़ी नरेश राजा अजीतसिंह और पं० मोतीलालजी नेहरू के पत्रों का आदान-प्रदान (सन १८८६ से १६०० तक) बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। पं० जवाहरलाल जी नेहरू के प्रधान मन्त्री बनने के बाद मैं उनसे पहली बार १६५७ ई० में मिला। उस समय पं० मोतीलाल जी के स्वलिखित पत्र मैंने उनको दिखाए थे। उन्होंने कहा था कि इनका उपयोग करें। नेहरूजी के जीवनकाल में ही १६६० ई० में श्री बी० आर० नन्दा ने दि नेहरूज़ नामक अंग्रेजी पुस्तक की रचना की। उस समय नेहरू परिवार के साथ खेतड़ी के पुराने सम्बन्ध की जानकारी मैंने दी थी जिसका उल्लेख नन्दा साहिब ने उक्त पुस्तक के प्रारम्भ में 'एक्नालेजमेन्ट' में किया है।

शेखावाटी के इतिहास के लिए जब मैं खोज और सामग्री एकत्रित करने में लगा हुआ था तब सन १६२० में 'उसने कहा था' के अमर कथाकार स्वर्गीय पं० चन्द्रधर गुलेरी के सुझाव पर मैंने राजा अजीतसिंह जी का जीवन चरित्र लिखने का काम आरम्भ किया। इस प्रसंग में मुझे राजा साहिब की पुत्री स्वर्गीया चन्द्रकुमारी जी ने अपने पिता का निज का बस्ता दिया जिसमें अनेक पत्र प्राप्त हुए। आगे चल कर खेतड़ी का इतिहास, खेतड़ी नरेश और स्वामी विवेकानन्द, केसरीसिंह समर, सीकर का

इतिहास और देश-भक्तों की कारावास कहानियां आदि मेरे द्वारा रचित पुस्तकें इसी शोध की कड़ियां हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थान और नेहरू परिवार' मैंने तथ्यात्मक ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर तैयार की है। इसमें स्वर्गीय पं० नन्दलाल नेहरू के खेतड़ी में दीवान नियुक्त होने (१८६१ ई०) से अद्यावधि विवरण सम्मिलित है। पं० मोती लाल जी के वाल्यकाल तथा वाद में खेतड़ी के राजा और जनता के लिए शुभ परामर्श, पं० जवाहरलाल जी, श्रीमती कमला नेहरू और श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा विशाल राजस्थान प्रान्त की जनता के हितसाधक कार्यों का इसमें दस्तावेजी सवूतों के साथ वर्णन किया गया है। नेहरू परिवार के इतिहास में पं० नन्दलाल जी का खेतड़ी आगमन और राजा फतहसिंहजी से उनका सम्बन्ध स्थापित होना वहुत ही महत्वपूर्ण है। पं मोतीलाल जी के वचपन के आरम्भिक दस वर्ष खेल-कूद और शिक्षा ग्रहण करने में खेतड़ी में ही वीते थे। स्वर्गीय राजा अजीतसिंह जी से उनकी घनिष्ठ मित्रता रही।

सन १८९९ ई० में पं० मोतीलालजी पहली वार यूरोप यात्रा पर गये। उस समय राजस्थान में घोर अकाल की छाया मंडरा रही थी। पंडितजी को उस समय खेतड़ी की जनता के विषय में वड़ी चिन्ता हुई और वे राजा साहिव को एक सच्चे और शुभचिंतक मित्र की तरह सत्परामर्श देना नहीं भूले। उन्होंने लन्दन से अपने पत्र में लिखा "मुझे भय है कि खेतड़ी में अकाल पड़ रहा है, आप अकाल पीड़ितों की मदद करें, अन्य मदद करने वालों को सम्मानित करें, अकाल पीड़ितों की सहायता करना अपना धर्म वना लें।" राजस्थान की जनता के प्रति शुभैषी मित्रवत् दिया हुआ यह परामर्श आज भी उतना ही गंभीर और सारयुक्त है जितना आज से ८२ वर्ष पूर्व था।

इसी प्रकार पं० जवाहर लाल जी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व एवं तदनन्तर प्रधान मन्त्री के रूप में समय-समय पर राजस्थान की जनता के लिए आत्मीय भाव रखते हुए अनेक उपयोगी कार्य किये। श्रीमती कमला

सरस्वती और विलुप्त दृषद्वती का मध्यवर्ती क्षेत्र ही पवित्र ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र था। सूरतगढ़ के निकट रंगमहल में जो सांस्कृतिक अवशेष खोज निकाले गये हैं, उनका समय ६०० वर्ष ईसा पूर्व से गुप्तकाल तक माना गया है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में और उसके वाद तो राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में आर्य जनपद अथवा गणराज्य स्थापित हो गये थे। राज्य के पूर्व क्षेत्रों में शूरसेन और मत्स्य जनपद थे तथा पश्चिम और दक्षिण में मालव आर्जुनायन, यौधेय और आभीर। मालवों ने तो शिवियों के साथ मिलकर सिकन्दर महान् तक को इस क्षेत्र से चुपचाप निकल जाने को वाध्य किया था, ऐसा माना जाता है।

मत्स्य की राजधानी विराट नगर थी जिसे अव वैराठ कहा जाता है। ईसापूर्व चौथी और पांचवीं शताब्दियों में यहां अनेक विशाल बौद्ध विहार थे। अशोक के दो शिला-फलक यहां से प्राप्त हुये हैं। जयपुर क्षेत्र में विभिन्न स्थानों से शूरसेन और मालव जनपदों के अस्तित्व की साक्षी देने वाली विविध वस्तुयें भी प्राप्त हो चुकी हैं। उत्तर मौर्यकाल और शुंगकाल की मूर्तियां भी मिली हैं। चित्तौड़ के ऐतिहासिक दुर्ग के निकट नगरी से शिविजनपद की मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं। इस स्थान का वर्णन पतंजलि के महाभाष्य में भी आता है।

ईसा की तीसरी शताब्दी में कुषाण राजवंश के अन्त के साथ ही आधुनिक अजमेर और वीकानेर के क्षेत्रों में सम्पन्नता और समृद्धि का काल भी समाप्त हो गया। वर्तमान भरतपुर वाले क्षेत्र में यौधेय जमे रहे, किन्तु मालव जनपद तव वड़ा शक्तिशाली हो चला था जो समुद्रगुप्त की दिग्विजय तक वैसा ही वना रहा। छठी शताब्दी में हूणों के आविर्भाव ने गुप्त साम्राज्य को झकझोर दिया और तोरमान ने राजस्थान के आर्य जनपदों को भी निरापद नहीं रहने दिया। मिहिरकुल हूण को यशोधर्मन् ने पराजित कर शीघ्र ही यह हारी वाजी वदल डाली और अन्तिम गुप्त सम्राटों का आधिपत्य भूतपूर्व ढूंढार और मेवाड़ क्षेत्रों तक फैला रहा। किन्तु साम्राज्य के क्षय के पश्चात् इन सुदूर जनपदों पर नियंत्रण रख पाने

वाली केन्द्रीय सत्ता का अभाव हो गया और विभिन्न आक्रमणकारियों के घुल-मिल जाने से समाज की युग-प्राचीन व्यवस्थायें और मान्यतायें एक-बारगी हिल गईं। इसी स्थिति में राजस्थान के राजपूत वंशों का उत्थान हुआ। आठवीं शताब्दी का अन्त होते-होते परिहार या प्रतिहार राजपूतों ने एक विशाल साम्राज्य की नींव डाली जो लगभग दो सौ वर्षों तक राजस्थान के बड़े भू-भाग के स्वामी रहे। प्रतिहारों के पीछे-पीछे मेदपाट (मेवाड़) के गुहिलोत, चौहान, सोलंकी और राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश भी उभर रहे थे। इनमें प्रतिहार अथवा गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात् सांभर के चौहान सबसे बड़ी शक्ति के रूप में प्रकट हुये।

राजपूतों का वंशगत वैर और अपनी-अपनी उच्चता और प्रभुता का सिक्का जमाने की प्रवृत्ति इन वंशों के राजनीतिक उद्भव के साथ ही परिलक्षित होती है। 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार कन्नौज के राष्ट्रकूट जयचंद द्वारा अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन और उसमें दिल्ली और अजमेर के स्वामी पृथ्वीराज का अपमान इसका उदाहरण है। पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता का हरण दोनों वंशों में वैमनस्य का कारण वना और जयचंद के उकसावे से अन्ततः मोहम्मद गौरी के हाथों तराई की लड़ाई में भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट की पराजय और मृत्यु भारतीय इतिहास की जानी-मानी वात है।

तेरहवीं शताब्दी का आरम्भ राजस्थान में विभिन्न राजपूत राजवंशों का अभ्युदय काल रहा है। पृथ्वीराज के पतन के पश्चात् भी चौहान तो थे ही, मेवाड़ में गुहिलोत या सिसौदिया वढ़े और ढूंढाड़ में कछवाहों ने आमेर के राज्य को एक निश्चित स्वरूप दिया। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में गुहिलोत-वंशी महाराणा कुंभकर्ण (१४३३-१४६८ ई०) और महाराणा संग्रामसिंह (१५०९-१५२७) जैसे वीरों और योग्य शासकों को जन्म दिया। महाराणा संग्रामसिंह या सांगा के नेतृत्व में ही राजस्थान ने पहली वार और अन्तिम वार एक होकर १२ मार्च, १६२७ ई० को विदेशी आक्रमक वावर का खनवा के मैदान में सामना किया और राजपूत

राजवंशों के इस सम्मिलित धड़े की पराजय से ही भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस पराजय के वाद राजपूत फिर एक न हो सके। यद्यपि सांगा का पुत्र उदयसिंह और पौत्र प्रतापसिंह आजीवन मुगल साम्राज्य का प्रतिरोध करते रहे, तथापि आमेर-जयपुर के कछवाहे, जोधपुर और वीकानेर के राठौड़ तथा बूंदी और कोटा के हाडा शाही नौकरी में जाकर साम्राज्य के स्तंभ बन गये और इन राज्यों का वैभव मुगल सत्ता के सद्योदित चन्द्रमा की कलाओं के समान ही वढ़ता रहा। मेवाड़ और मुगलों के अनवरत संघर्ष ने जहाँ सीसौदिया राज्य के साधनों को समाप्तप्राय कर दिया, वहाँ अन्य राजपूत राजाओं ने अकवर और उसके उत्तराधिकारियों की अधीनता में अपने पद-प्रतिष्ठा और मान-सम्मान को पर्याप्त वढ़ाया। औरंगजेव की मृत्यु के वाद जव मुगल साम्राज्य क्षत-विक्षत होने लगा था तो आमेर का सवाई जयसिंह अपने छोटे से राज्य की सीमायें उत्तर में शेखावाटी से लगाकर दक्षिण में चम्वल तक और पश्चिम में सांभर की झील से पूर्व में यमुना-तट तक वढ़ाने में सफल हुआ था। सवाई जयसिंह अपने समय में राजस्थान का सवसे शक्ति-सम्पन्न और वैभवशाली शासक था।

१७४३ ई० में सवाई जयसिंह की मृत्यु के अनन्तर राजस्थान के मार्ग मरहटों के लिए खुल गये और इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने राजस्थान में जैसी लूट-मार और जैसे अत्याचार किये, वैसे संभवत: मुगलों ने भी नहीं किये थे। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, वूंदी और कोटा मरहठों की वाढ़ से संत्रस्त थे। राजपूत राज्यों की आपसी प्रतिस्पर्द्धाओं, द्वेष और ईर्ष्या ने मरहठों को इन राज्यों में खुलकर खेलने का अवसर दिया और उन्होंने जोंक की तरह इनका खून चूसा। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पिंडारियों के दस्यु-दल भी मरहठों के साथ राजस्थान में आ गये और इतनी लूट-खसोट, इतना रक्तपात और इतने षड्यंत्र-कुचक्र हुये कि चारों ओर अराजकता और अव्यवस्था का वोलवाला हो गया। १८०३ ई० में राजस्थान अंशतः व्रिटिश संरक्षण में गया और इसके वाद ही इस प्रदेश

में कुछ शान्ति और व्यवस्था के दर्शन हुए। १८१७-१८ में राजस्थान के विभिन्न राजाओं के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वाकायदा संधियां हुई जिनके अन्तर्गत वाह्य आक्रमणों से उन्हें सुरक्षा प्राप्त हुई।

लगभग सत्तर वर्षों तक मरहठों और पिंडारियों से प्रताड़ित होने के पश्चात् राजस्थान की रियासतों ने अंग्रेजों के संरक्षण में पहली वार शान्ति की सांस ली थी। अंग्रेजों की इस दासता को उन्होंने वरदान के रूप में स्वीकार किया और १८५७ में जव भारतीय सेनायें फिरंगियों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई तो प्रायः सभी राजाओं ने विवश होकर उस विद्रोह को दवाने में अंग्रेजों की सहायता करने में ही अपना हित समझा। देशी नरेशों ने विप्लव की उस वाढ़ में अंग्रेजों के लिये एक सेतु का काम किया। राजाओं को इसका प्रतिफल भी खूब मिला। १८५८ में जव भारतीय उपनिवेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी से "ताज" को हस्तांतरित हुआ और महारानी विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी की उपाधि धारण की तो संरक्षित देशी राजाओं को व्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा में भागीदार माना गया। यद्यपि इन राजाओं को अव परस्पर राजनीतिक व्यवहार रखने तथा अन्य सरकारों से सीधी वातचीत करने का अधिकार नहीं रह गया था, तथापि उनकी अपनी स्थिति सुरक्षित और "संरक्षित" थी। सव-कुछ करना-धरना तो सार्वभौम सत्ता का काम था, किन्तु अपने आंतरिक मामलों में राजा एकछत्र शासक थे और अपने आचरण और व्यवहार से उन्हें अव "ताज" और उसके प्रतिनिधियों को तुष्ट करना था ताकि उन्हें खिताव और तमगे मिलते रहें और सलामी की तोपें वढ़ा दी जायं। अपने सापेक्षिक महत्व को राजा लोग अव इन्हीं वातों से आंकने लगे थे।

राजाओं की जहां यह स्थिति थी, वहां सरदार, जागीरदार और सर्वसाधारण प्रायः अंगरेजों के अभ्युदय से प्रसन्न नहीं थे। अंगरेजों के आगमन ने जागीरदारों के राजनीतिक महत्व को एकदम समाप्त कर दिया था और उनका सैनिक महत्व भी अव शून्य रह गया था। इस वर्ग ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध असन्तोष की आग को सुलगाये रखा और १८५७ में मेवाड़

और मारवाड़ के अनेक सामन्तों ने तो विद्रोहियों का साथ दिया। इस विद्रोह की असफलता ने विरोध को यद्यपि ऊपर से बुझा दिया था किन्तु १९०५ में बंगभंग के बाद वह आग पुनः धधकने लगी। देशव्यापी क्रान्तिकारी भावनाओं से राजस्थान के निवासियों के हृदय भी सूने नहीं थे। विदेशियों के विरोध की प्रच्छन्न अग्नि यहां भी अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी, किन्तु अब संघर्ष के तौर-तरीके कुछ और ही होते थे। १९३० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया था और इसके आसपास ही साइमन कमीशन ने अखिल भारतीय महासंघ (फेडरेशन) की सिफारिश की थी। ब्रिटिश भारत में चल रहे स्वाधीनता आन्दोलन की तब के राजस्थान की रियासतों में प्रतिक्रिया हुई और प्रजा मण्डल, प्रजा परिषद, लोक परिषद् आदि नामों से रियासती जनता भी "पूर्ण उत्तरदायी सरकार" के लिए आन्दोलन करने लगी। इन आन्दोलनों को दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई, बहुत लोग लाठी और गोली के शिकार हुये, बहुतों ने कारावास की यातनायें सहीं, किन्तु 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद्' के तत्वावधान में रियासती जन आन्दोलन बराबर जोर पकड़ता गया। दूसरे महायुद्ध के पश्चात स्वतंत्रता के लिए जनता की बेताबी बहुत बढ़ गई और जयपुर, बीकानेर, जोधपुर तथा शाहपुरा जैसी छोटी-सी रियासतों में भी अनेक वैधानिक सुधारों की घोषणा की गई।

१५ अगस्त, १९४७ को अंगरेज भारत से विदा ले गये और हमारे स्वतंत्र सार्वभौम प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र का उदय हुआ। अगले दो वर्षों में राजपूताना की बाईस छोटी-बड़ी रियासतों का भी विलय होकर राजस्थान को वह स्वरूप मिला जो आज है। यह सब चालू इतिहास की बातें हैं जिन्हें यहां दोहराना न आवश्यक है और न वांछनीय।

२. उन्नीसवीं सदी के मध्य राजस्थान

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के समाप्त होते-होते समूचे राजस्थान पर अंग्रेजों का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। केवल सिरोही राज्य को छोड़कर अन्य सभी रियासतों के साथ संधियां हो गई थीं और सिन्धिया के साथ हुई संधि के अन्तर्गत अजमेर-मेरवाड़ा का परगना भी जुलाई, १८१८ ई० में सीधे अंग्रेजी शासन में आ गया था। अंग्रेजों की नीति तब प्रमुख राज्यों के साथ संधि करने तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने अर्द्ध-स्वतंत्र राज्यों तथा रियासतों से सम्बद्ध बड़े-बड़े ठिकानों से भी अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मरहठों और पिंडारियों की घुसपैठ तथा लूटमार के कारण जैसा विप्लव चला था उसमें रियासतों के आधीन अनेक जागीरदार भी निरंकुश और उद्दण्ड हो चले थे। अंग्रेजों ने राजाओं और उनके शक्ति-सम्पन्न सामन्तों के बीच मध्यस्थता की और दोनों के हितों की रक्षा करने वाले समझौते कराये। १८१८ में कर्नल जेम्स-टॉड ने मेवाड़ के जीगीरदारों और महाराणा के पारस्परिक सम्बन्धों पर एक कौलनामा तैयार करवाया था और इसके अगले वर्ष जयपुर में भी राजा और सामन्तों की आपसी कशमकश दूर करने के लिये एक ऐसा ही समझौता सर डेविड आक्टरलोनी ने कराया था।

उदयपुर के साथ शाहपुरा और बांसवाड़ा के साथ कुशलगढ़ को अर्द्ध-स्वतंत्र मानते हुये राजस्थान की रियासतों की सूची में सम्मिलित किया गया। मरहठों के घोड़ों की टाप से कुचले हुये राजस्थान के राजा-रईस अब

कम्पनी सरकार की सार्थकता और सामर्थ्य को समझ चुके थे। जयपुर के वड़े राज्य के एक शक्ति सम्पन्न करद राज्य खेतड़ी के राजा अभयसिंह ने इस काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वहुत सहायता की और इस प्रकार अंग्रेजों से अपना सीधा सम्वन्ध स्थापित किया। जव जनरल मानसन लड़ाई के मैदान से भाग रहा था तो खेतड़ी के सैनिक उसकी सहायता के लिये पहुंचे और चम्वल नदी के तट पर अपने सेनापति सहित अनेक सैनिक खेत रहे। कर्नल गार्डनर और लार्ड लेक, दोनों ही खेतड़ी के राजा के मित्र थे। उन्हें समय-समय पर खेतड़ी से यथेष्ट सहायता मिलती रही और वे राजा के गहरे मित्र वन गये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने राजा अभयसिंह को कोटपूतली का परगना जागीर में देकर उसे कम्पनी सरकार का भी जागीरदार वना लिया। जयपुर के साथ १८०३ में कम्पनी ने जो संधि की थी, वह थोड़े दिनों में ही टूट गई, किन्तु इसके वावजूद खेतड़ी और अंग्रेजों के सम्वन्ध पूर्ववत् प्रगाढ़ और मैत्रीपूर्ण वने रहे।

अंग्रेजों के साथ राजस्थान के राजाओं की संधियों के फलस्वरूप वाहरी आक्रमणों का सिलसिला समाप्त हो गया था। पिंडारियों के पूर्ण दमन के साथ मरहठा आक्रान्ताओं के प्रति भी राजस्थान के राजा-महाराजा अव निश्चित हो गये, किन्तु रियासतों की शासन-व्यवस्था पुरानी सामन्ती परिपाटी के अनुसार सैनिक आधार पर ही संचालित होती रही। राजस्थान में आन्तरिक शान्ति तव भी नहीं थी। विभिन्न राज्यों में अल्पवयस्क शासकों के कारण रावलों अथवा रनिवास का शासन चलता था। और यह स्थिति अनेक कुचक्रों और षडयंत्रों को जन्म देती थी। यहां-वहां जंगली जातियां और अराजकतावादी तत्व लूट-खसोट में लगे रहते थे। अंग्रेजों ने राज्यों के आंतरिक मामलों में विशेष दिलचस्पी नहीं ली, फिर भी यदा-कदा अवसर मिलते ही उनमें हस्तक्षेप करने के लिये वे उत्सुक रहते थे। प्रत्येक का सेना-व्यय अव भी काफी वढ़ा-चढ़ा था, क्योंकि सेना के विना शासन-व्यवस्था की वात तव सोची ही नहीं जा सकती थी। सभी दरवारों और ड्योढ़ियों में छल-कपट का दौर-दौरा था, राजा और रईस

भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में डूबने लगे थे।

राजस्थान में यह विषम संक्रान्तिकाल था। अंग्रेजों के संरक्षण और मित्रता ने वंशपरम्परागत राजपूती वीरता और सैनिक बल के लिये कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी और पुराने राजनैतिक, सैनिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य तेजी से वदल रहे थे। विशाल मुगल साम्राज्य की पृष्ठभूमि दिन प्रतिदिन धुंधली होती जा रही थी और अंग्रेजों के साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की जो नयी रोशनी आई उसकी चकाचौंध समझ से परे थी। हर वात का सापेक्षिक महत्व सहसा वदल गया था और वदल रहा था। अयोग्य और स्वार्थलिप्त चाटुकार सलाहकारों से घिरे, अज्ञान के अन्धकार में डूबे और पूर्वजों की विरुदावली में ही अपना वड़प्पन देखने वाले राजस्थान के अनेक राजाओं को १८३३ ई० के लगभग जव लार्ड विलियम वेंटिक ने उपहार स्वरूप पृथ्वी के मानचित्र वाले ग्लोव, एटलसें, दूरवीनें और अंग्रेजी की पुस्तकें भेजीं तो यह उनके लिये वड़ी अटपटी चीजें थीं। इसके आसपास ही जव कम्पनी सरकार ने पत्र-व्यवहार को फारसी के स्थान पर अंग्रेजी करने का प्रस्ताव किया तो विभिन्न राज्यों में अंग्रेजी के पठन-पाठन की ओर ध्यान दिया जाने लगा। तव तक राजस्थान में आधुनिक शिक्षा का प्रसार प्रायः नहीं के वरावर था।

इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा ही राजस्थान के राजघराने और नयी प्रभु-सत्ता के वीच तव विद्यमान सांस्कृतिक खाई को पाट सकती थी। सदियों तक मुगल वादशाहों का आधिपत्य स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओं को सात सागर पार इंग्लैंड की महिला विक्टोरिया को अपना साम्राज्ञी मानने में कोई हिचक नहीं हुई क्योंकि इसके साथ उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि उनके राज्य अव उनकी वंश परम्परा के लिये सुरक्षित हैं। भारत के पहले वाइसराय लार्ड केनिंग के शब्दों में "भारतीय नरेश इंग्लैंड के अधीश्वर के पूर्ण आधिपत्य की यथार्थता को अनुभव ही नहीं सहर्ष स्वीकार भी करते थे।" १८५७ के विद्रोह की असफलता ने इस सत्य को स्थायी रूप से स्थापित कर दिया था और अपने नये गौरांग महा-

प्रभुओं को देखा-देख राजस्थान के राजा भी अपने-अपने राज्यों में शासन-व्यवस्था को तदनुकूल परिवर्तित करने के लिये प्रयत्नशील हुये। अंग्रेजों की ओर से भी बराबर इस बात के लिये दबाव बना रहता था कि राजकाज का ढाँचा ब्रिटिश प्रान्तों के शासन के आधार पर ही बनाया जाय। यह आधुनिक शिक्षा और अंग्रेजी भाषा के बिना संभव नहीं था।

अंग्रेजों के बढ़ते हुये सांस्कृतिक प्रभाव और राजस्थान के तत्कालीन नरेशों की अटपटी स्थिति का एक बहुत उपयुक्त उदाहरण खेतड़ी के राजा फतहसिंह ने अपनी आत्मकथा में दिया है। १८५५ ई० में यह राजा अपनी माता और दास-दासियों के साथ हरिद्वार के मेले में गया था। लौटते समय यह लोग एक पखवाड़े तक दिल्ली में रहे। एक दिन बालक राजा फतहसिंह दिल्ली के भूतपूर्व कमिश्नर फ्रेजर से मिलने गया तो वह घर पर नहीं था। यह मालूम होने पर कि फ्रेजर साहब शीघ्र ही आने वाले हैं, फतहसिंह उसके मुलाकाती कमरे में बैठ गया और एक चमकीली सजिल्द पुस्तक को उठाकर उसके चित्र देखने लगा। उसने स्वयं लिखा है: "मैं चित्रों को देखकर आनन्द पा रहा था, किन्तु उसके अक्षर नहीं पढ़ सकता था। असमंजस में और आश्चर्यपूर्वक मैं वह पुस्तक देख ही रहा था कि मि० फ्रेजर आ गये। उन्होंने मेरी कठिनाई को समझकर मुझसे अंग्रेजी पढ़ने का अनुरोध किया। मैंने भी अपने डेरे पर लौटकर माता से अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। उसी दिन अंग्रेजी के शिक्षक बुलाये गये और मैंने अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ कर दिया।"

राजघरानों के बालकों के लिये तब साधारण पाठशालाओं में जाने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी, अतः १८७० ई० के अजमेर दरबार में वाइसराय लार्ड मेयो ने राजा-महाराजाओं, उनके भाई-बेटों और सरदारों-जागीदारों की शिक्षा के लिये एक विशिष्ट विद्यालय खोलने का प्रस्ताव किया था और १८७५ में मेयो कालेज की स्थापना से इस योजना को मूर्त्त रूप मिला था। किन्तु तब तक राजाओं और राजकुमारों की शिक्षा के लिये वैसी ही घरेलू व्यवस्था चलती रही थी जैसी राजा फतहसिंह

ने स्वयं अपने विषय में लिखी है। इस राजा को पहले सोनपत-निवासी गोविन्द सहाय और वाद में दिल्ली कालेज में शिक्षित ज्वालासहाय नामक अध्यापकों ने अंग्रेजी पढ़ाई थी। जयपुर के वालक महाराजा रामसिंह को भी १२-१३ वर्ष की आयु होने पर आगरा कालेज के पण्डित शिवदीन अंग्रेजी और उर्दू पढ़ाने आये थे। और उनके अध्यापन से रामसिंह थोड़े ही दिनों में अंग्रेजी पढ़ना और वोलना सीख गये थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ही शासन सुधारों की जो प्रवृति विभिन्न राज्यों में आरम्भ हुई थी, वह वरावर वढ़ रही थी और १८५७ के वाद तो सड़कों का निर्माण, स्कूल-कालेजों की स्थापना, पानी और रोशनी की व्यवस्था, अदालतों में मुकदमों की सुनवाई, चिकित्सा के लिये अस्पताल आदि आधुनिक वातें तेजी से अपनायी जाने लगीं। इस संक्रमण काल में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की पूछ होने लगी। न केवल राजघरानों के वच्चों को शिक्षा देने के लिये, अपितु व्रिटिश भारतीय प्रान्तों में प्रचलित नये-नये फौजदारी और दीवानी कानूनों को आवश्यक परिवर्त्तनों के साथ राजस्थान की रियासतों में लागू करने, मालगुजारी को नये और आधुनिक आधार पर नियत करने और पैमाइश व वन्दोवस्त के आयोजनों के लिये अंग्रेजी जानने वाले लोगों की तलाश होने लगी। ऐसे लोग तव दिल्ली, आगरा तथा समीपवर्ती व्रिटिश प्रान्तों में ही जहां पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा का प्रभाव अधिक हो चला था, मिल सकते थे। खेतड़ी के राजा के दोनों शिक्षक तथा महाराजा रामसिंह के अध्यापक पण्डित शिवदीन ऐसे ही उदाहरण हैं।

वैसे मुगल सम्राज्य के क्षय के समय से ही राज-काज में चतुर फारसी-दां लोगों के राजस्थान की रियासतों, विशेषतः जयपुर, अलवर, भरतपुर और कोटा जैसी पूर्वी रियासतों में आने और छोटे-वड़े पदों पर काम करते रहने की परम्परा चल रही थी। अंग्रेजों के संसर्ग ने नये-नये अंग्रेजी शिक्षित लोगों के लिये इन राज्यों में नौकरी के अवसर सुलभ कर दिये। उस काल में अध्यापक वन कर आने वाले लोग भी इन रियासतों में वाद में राज्य के

वड़े-से-वड़े ओहदे पर पहुंच गये और वड़ा मान-सम्मान अर्जित किया। पण्डित शिवदीन जयपुर के प्रधान मंत्री वने और वड़े यश के भागी हुये।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में राजस्थान की ऐसी ही परिस्थितियां थीं। किन्तु तभी कर्नल जेम्स टाड के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ने राजस्थान के नरेशों के सुप्त गौरव को भी जगाया था। अंग्रेजों के साथ अपने सम्वन्धों को वढ़ाने और सुदृढ़ करने के साथ-साथ संवेदनशील राजा-महाराजा वाहर से आने वाले गुणियों, विद्वानों और सन्त-महात्माओं को सम्मानित करने में आत्म-तुष्टि का अनुभव करते थे। वढ़ते हुये विदेशी प्रभाव के वावजूद वे अपने आपको भारतीय आदर्शों का संरक्षक भी मानते थे। व्रिटिश ताज ने उनके राज्याधिकार और राज्यों को संरक्षित कर आश्वस्त कर दिया था, किन्तु इस संरक्षण और सुरक्षा ने सारे पुराने मूल्यों और आदर्शों को एक वारगी हिला भी दिया था। ऐसे असमंजस के वातावरण में राजस्थान के क्षितिज पर आर्य समाज के संस्थापक और "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रणेता महर्षि दया-नन्द सरस्वती का उदय हुआ और उन्होंने राजस्थान के विभिन्न राज्यों में घूम-घूम कर धार्मिक और सामाजिक नव जागरण का संचार किया। उदय-पुर के महाराणा सज्जनसिंह स्वामी जी के अनन्य भक्त हो गये थे, जोधपुर और शाहपुरा के नरेश भी उनसे वहुत प्रभावित थे। युवक महाराजा सज्जन सिंह (१८७४-१८८४ ई०) ने काशी से नवोदित आधुनिक हिन्दी के युग प्रवर्तक विद्वान, कवि और लेखक भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र को भी अपने यहां वुलाकर दरवार में सम्मानित करना अपना कर्त्तव्य समझा था। भारतेन्दुजी को इन महाराणा ने सरोपाव और दस हजार रुपये की राशि भेंट स्वरूप दी थी।

यद्यपि भोग-विलास और राग-रंग का जीवन राजाओं के लिये एक सामान्य वात थी, तथापि यह घटनायें यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं कि उनको संस्कार में अपने पूर्वजों से जो परम्परायें मिली थीं, वे अद्या-वधि किसी न किसी रूप में निभाई जा रही थीं। शूरवीरता प्रदर्शित करने का समय जा चुका था और राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेज सारे भारत के एक-

छत्र स्वामी थे। राजाओं के लिये अब अपनी मान-मर्यादा का निर्वाह ही सब कुछ था और उनका विद्यानुराग, समय-समय पर प्रदर्शित स्वाभाविक उदारता, गुणियों और विद्वानों का सम्मान करके ही वे इसकी अभिव्यक्त करते थे। विदेशी दासता में भी राजस्थान के इतिहास का यह एक विचित्र विरोधाभास है कि खेतड़ी जैसी छोटी-सी रियासत ने स्वामी विवेकानन्द से १८६१ ई० में नाता जोड़ा और ऐसा निभाया कि स्वयं विवेकानन्द ने स्वीकार किया है :

"भारत की उन्नति के लिए जो थोड़ा-सा काम मैं कर पाया हूं वह कभी न होता यदि मुझे (खेतड़ी के) राजाजी न मिलते।"[1]

---

[1]Brahamvadin, १८९७; समन्वय, कलकत्ता।

३. खेतड़ी : "चीफ़शिप"

भारत में स्वाधीनता के सूर्योदय से पूर्व राजपूताना कहे जाने वाले भूभाग में जयपुर प्रमुख रियासत थी जिस पर ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से कछवाहा राजपूतों का शासन रहा था। आरठहवीं शताब्दी के आरंभ में जयपुर नगर की स्थापना के पूर्व यह रियासत पुरानी राजधानी आमेर के नाम से जानी जाती थी और जयपुर की तुलना में एक वहुत छोटे रजवाड़े की तरह थी। जयपुर को इसके स्वतंत्रता-पूर्व का महत्व, विस्तार और स्वरूप प्रतापी महाराजा सवाई जयसिंह के समय में मिला था जो औरंगजेब के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में आमेर की गद्दी पर वैठा था। सवाई जयसिंह ने ही अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता और कूटनीतिक क्षमता के वल पर पतनोन्मुख मुगल सम्राज्य के अन्तिम दिनों में अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करके जयपुर को सारे राजस्थान में सबसे प्रभावशाली बना दिया था।

सवाई जयसिंह के पूर्व जयपुर रियासत का शीर्ष उत्तर पश्चिमी भाग, जिसे आज भी शेखावाटी प्रदेश कहा जाता है, शेखावतों के अधिकार में था, जो आमेर के राजवंश की ही एक शाखा थे। आमेर के तेरहवें राजा उदयकरण (१३६६-१३८८ ई०) के तीन पुत्र थे जिनमें मझले का नाम था वालाजी। वालाजी का पौत्र शेखाजी हुआ जिसके वंशज शेखावत और उनका अधिकृत प्रदेश शेखावाटी कहलाया। शेखाजी ने वयस्क होते ही अपने आपको वीर और पराक्रमी सिद्ध करना आरंभ कर दिया। उसके पिता मोकल के समय से आमेर को सद्भावना वश घोड़े भेजने का एक नियम-सा

चल पड़ा था जो वाद में एक प्रकार की लाग या राजनीतिक कर ही माना जाने लगा था। स्वतंत्रता प्रेमी शेखाजी को यह नियम अनुचित और असम्मान-जनक प्रतीत हुआ और उसने अपने वाहुबल से ३६० गांवों पर अधिकार कर अपने आपको एक सर्वथा स्वतंत्र शासक के रूप में प्रतिष्ठित किया।[1] शेखाजी को पांच सौ पन्नी पठानों के एक दल से भी वड़ी सहायता मिली थी जो तब दिल्ली से विद्रोह करके इधर आया था। शेखाजी ने इनसे पर-स्पर भाईचारा रखा और ऐसे कौल-करार किये जिनसे एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना वढ़े और विश्वास जमे। शेखावतों के ध्वज में नीली पताका लगाने का रिवाज इसी करार के अन्तर्गत चला था। इन पन्नी पठानों की वस्ती जिन्हें अंग्रेज इतिहासकार एलफिन्सटन ने दुर्रानी वंश की एक शाखा माना है, आज भी अमरसर के आसपास है। जयपुर से प्राय: ३४ मील उत्तर में अमरसर वह स्थान है जिसको शेखाजी ने सर्व प्रथम अपनी राजधानी वनाया था।

शेखाजी की वंश-वेल खूव फूली-फली। कुल वारह पुत्र हुये जिनसे शेखावाटी के विभिन्न ठिकाने चले। अकवर के समय में खण्डेले के रायसल दरवारी ने तो वड़ा नाम पाया। उसकी वीरता और वफादारी को देखकर अकवर ने उसे अपने हरम का ओहदेदार वनाया था। मुगल दरवार में वह तीन हजारी मनसवदार था।

रायसल के सात पुत्र जीवित रहे। इनमें गिरिधर तो खण्डेले का राजा वना और शेष छ: ने यथायोग्य जमीन जागीर पाई। अठारहवीं सदी के आरंभ में जव सवाई जयसिंह जयपुर नगर को वसाने का उपक्रम कर रहा था तो शेखावतों में शार्दूलसिंह वड़ा वीर और प्रतापी था। उसने कायम-खानी नवाव रूहेलखां से झूंझनू हस्तगत किया। उसकी एवं अन्य शेखावतों की सहायता से सीकर के शिवसिंह ने फतहपुर में भी कायमखानियों के पुराने राज्य को उखाड़ दिया। इस प्रकार इधर जहां शेखावत अपनी शक्ति

---

[1]एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जेम्स टाड, पृष्ठ ३२२

का विस्तार कर रहे थे, उधर जयपुर का सवाई जयसिंह भी अपने प्रभुत्व और गौरव-गरिमा को वढ़ा रहा था। मुगल सम्राज्य अपनी अन्तिम सांसें गिन रहा था और शेखावत वीर जो तव तक शाही सेवा में मनसव पाते रहे थे, अव जयसिह की नीतिज्ञता और कौशल के आगे झुकने को विवश हुये। शार्दूलसिंह और शिवसिंह, दोनों ही ने अपने ही वंश की वरिष्ठ शाखा के ज्येष्ठ भाई की अधीनता स्वीकार करने में वैसे भी कुछ अनुचित नहीं माना क्योंकि उस युगान्तर काल में सवाई जयसिंह ही सर्वप्रमुख राजा था जिसका प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। किन्तु, इस अधीनता के वावजूद शेखावत सामंत दिल्ली के शाही दरवार से अपने सम्बन्ध रखने, सम्मान पाने, आने और जाने में स्वतंत्र थे।

खेतड़ी संस्थान या चीफशिप की स्थापना करने वाला शार्दूलसिंह का पौत्र भोपालसिंह था। वह जसरापुर के निर्वाण ठाकुर की पुत्री से विवाह करने के लिए गया था। उसने अपने श्वसुर-गृह से तीन कोस दूर पहाड़ियों से घिरे हरे-भरे स्थान को अपने घोड़ों के चराने के लिए वहुत उपयुक्त समझ कर अपने श्वसुर से मांग लिया। यह स्थान खेतसिंह की ढाणी कहलाता था जहां १७५५ ईस्वी में भोपालसिंह ने वर्तमान खेतड़ी नगर को वसाना आरंभ किया। पहाड़ी पर जो समुद्रतल से २,३३७ फुट ऊंची है, उसने भोपालगढ़ का किला वनवाया और १७५७ ईस्वी में इस नये नगर को वाकायदा अपनी राजधानी वनाकर रहने लगा।

खेतड़ी के राजा अजीतसिंह के समय में संग्रहीत पुराने कागजों से पता चलता है कि भोपालसिंह को १७५६ ई० में दिल्ली के शाही दरवार से एक हजारी का मनसव मिला था जो वाद में वढ़ाकर १,२५० का कर दिया गया था। उसके पितामह शार्दूलसिंह के समय में ही सिंघाना परगने के कुछ गांवों[1] पर अधिकार हो चुका था, शेष पर शनैः-शनैः भोपालसिंह

---

[1]विल्स रिपोर्ट के अनुसार सवाई जयसिंह ने ये गांव शाही जागीरदारों से इसारे पर लेकर इनको दिये थे।

आदि ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार जयपुर के वड़े राज्य के भीतर एक स्वतंत्र प्राय लघु राज्य की नींव पड़ी जिसने आगे चलकर राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान वनाया।

भोपालसिंह के वाद १७७१ ई० में उसका छोटा भाई वाघसिंह खेतड़ी का राजा वना। वह स्वयं मुगल सम्राट शाह आलम से कानोड़ (पटियाला) के पड़ाव पर जाकर मिला था। शाही फरमानों में उसके लिए "राजाहाय हिन्दोस्तान" और "राजाय राजगाव" जैसी आदरसूचक उपाधियों का प्रयोग मिलता है। राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध पिण्डारी सरदार अमीरखां ने भी जिसने आगे चलकर टौंक रियासत कायम की थी, कुछ समय वाघसिंह के यहां नौकरी की थी। वाघसिंह के मरने पर १८०० ई० में उसका पुत्र अभयसिंह खेतड़ी का स्वामी हुआ था।

अभयसिंह ने घोर अशान्ति और अराजकता के उस काल में वड़ी सूझ-वूझ और दूरदर्शिता से काम लिया था। उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नवोदित शक्ति को पहिचाना और मरहठों से पराजित होकर भागते हुए जनरल मानसन को सहायता पहुंचाई। चम्वल नदी के तट पर खेतड़ी के अनेक सैनिकों ने उसके पक्ष में लड़ते हुए अपने सेनापति सहित प्राण विसर्जित किये थे। कर्नल गार्डनर राजा अभयसिंह का 'पगड़वदल' दोस्त वना था और लार्ड लेक भी उसके प्रति मैत्री भाव रखता था। मरहठों के साथ हुए संघर्षों में खेतड़ी से प्राप्त सैनिक सहायता के लिए अंग्रेज अधिकारियों ने तव वड़ा एहसान माना था और सर्वाधिकार सहित कोटपूतली का परगना अभयसिंह को जागीर में दिया था। इस प्रकार सीधे अंग्रेजों का जागीरदार होने की हैसियत खेतड़ी के लिए तव एक राजनैतिक महत्व की वात थी।

अभयसिंह के पुत्र वख्तावरसिंह ने केवल तीन वर्ष राज्य किया। (१८२६-१८२९ ई०) और वाद में उसका तीन वर्षीय पुत्र शिवनाथसिंह खेतड़ी का राजा हुआ। वह भी वयस्क होने से पूर्व ही जनवरी, १८४३ में १६ वर्ष की आयु में चेचक से पीड़ित होकर मर गया, किन्तु उसकी

एक रानी, राणावतजी, तव गर्भवती थी। इस गर्भ से फतहसिंह का जन्म हुआ और उसके वयस्क होने तक खेतड़ी अनेक कुचक्रों और षडयंत्रों का घर वना रहा।

खेतड़ी का क्षेत्र जयपुर रियायत की दो निजामतों (जिलों) में पड़ता था। शेखावाटी निजामत का भाग परम्परागत या वपौती का था और तोरावाटी निजामत का इलाका कोटपूतली ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सीधा जागीर में मिला था। १९२७ ई० में खेतड़ी के मूल संस्थान और परगना कोटपूतली की कुल आय मिलाकर प्राय: वारह लाख रुपये सालाना आंकी जाती थी।[1] खेतड़ी की ओर से जयपुर को ७७,२४८ रु० वार्षिक कर या मामले के दिये जाते थे। यह कर देने पर भी खेतड़ी अपने आंतरिक शासन प्रवन्ध में स्वतन्त्र था।

९०३ वर्गमील में फैले खेतड़ी संस्थान में पांच वड़े कस्वे और २५३ गांव थे। इनके अतिरिक्त दो कस्वों और तेरह गांवों के स्वामित्व में अन्य शेखावत सरदारों के साथ खेतड़ी का भी हिस्सा था। यह कस्वे तथा गांव "शामलाती" कहे जाते थे।

प्राकृतिक दृष्टि से राजस्थान को दो भागों में विभक्त करने वाली अरावली पर्वतमाला जो दिल्ली के पास से आरम्भ हो जाती है, खेतड़ी इलाके में ही उभरकर सुनिर्मित शैल-श्रृंखला वनती है। खेतड़ी, सिंघाना जसरापुर, वाघोर, ववाई, त्योंदा, वनेटी और नारहड़ा के कस्वे पहाड़ी अंचल में ही स्थित हैं। पहाड़ियों की ऊंचाई कहीं-कहीं तो दो हजार फुट से भी अधिक है। खेतड़ी, वाघोर, जसरापुर और वीलवा के पहाड़ी घाटे प्रसिद्ध हैं।

पर्वती अंचल ने खेतड़ी को लोहा, तांवा, कसीस, नीला थोथा, सोन-मुखी, सोरा, सेता और सीसा जैसे खनिजों का भण्डार दिया है। यहां की तांवे की खानों से मुगल काल में भी तांवा निकलता था और अव तो स्वयं

---

[1] खेतड़ी का इतिहास, झा० शर्मा, पृष्ठ १७.

भारत सरकार इन खानों का एक महत्वाकांक्षी योजना के अन्तर्गत विकास कर रही है। १६०१ ई० में दिल्ली की भानामल गुलजारी लाल फर्म कोई चार-पांच वर्ष से एक खान से तांवा निकाल रही थी, किन्तु इसके वाद किसी को ठेका नहीं दिया गया और यह प्राकृतिक सम्पदा धरती में दवी पड़ी रही।

१६११ की जनगणना के अनुसार खेतड़ी राज के १६,८६६ घरों में १,३३,६८७ मनुष्य रहते थे। १६८ वर्गमील क्षेत्र तो पर्वताच्छादित और खन्दकों से भरा था और शेष क्षेत्र में जनसंख्या का यह घनत्व १८२ प्रति वर्गमील आता था।

इस छोटे से राज्य की राजधानी खेतड़ी जयपुर से लगभग ६० मील उत्तर में पर्वतावली के मध्य एक सुन्दर सुरम्य नगरी का दृश्य उपस्थित करती है। पहाड़ के मस्तक पर भोपालगढ़ का किला और राजमहल है। नगरी अनेक महलों, मन्दिरों और अन्यान्य इमारतों से मण्डित है। १८७० ई० में वना सेठ पन्नालाल शाह का तालाव दर्शनीय है। शेखावाटी में यह सर्वसुन्दर जलाशय माना जाता है।

शासन प्रवन्ध की दृष्टि से खेतड़ी संस्थान एक निजामत, पांच तहसीलों, तीन कोतवालियों, २२ थानों और तीन चौकियों में विभक्त था। लगभग दस विभाग शासन चलाते थे। १८६६ ई० तक खेतड़ी की अपनी टकसाल भी थी जिसमें चांदी और तांवे के सिक्के ढाले जाते थे।[1]

---

[1]Currencies of the Hindu States of Rajpootana

W. W. Webb, 1893

४. समस्याग्रस्त राज्य

खेतड़ी में १८४३ ई० के आरम्भ में राजा शिवनाथसिंह अकाल ही में काल-कवलित हो गये थे और राजा फतहसिंह की नावालिगी ने इस छोटे से राज को अनेक प्रकार की पेचीदगियों और कठिनाइयों में डाल दिया था। राजस्थान के राजघरानों के दस्तूर के अनुसार फतहसिंह की माता राणावतजी शिशु राजा की संरक्षिका और अभिभाविका थीं। राणावतजी की सास भटियाणीजी भी जीवित थीं और सास-वहू के अलग-अलग दल वन गये थे। राणावतजी के कर्ता-धर्ता थे पुरोहित रामनाथ, जवकि भटियाणीजी के मर्जीदान उनके कायस्थ कार्यकर्ता थे। खेतड़ी का सौभाग्य था कि इन विधवा रानियों की आपसी रस्साकशी के वीच भी पुरोहित रामनाथ ने बड़े उद्यम और परिश्रम से राज-काज चलाया। राजा शिवनाथ सिंह के समय में ही शासन चलाने के लिये चार सदस्यों की एक कौंसिल वन गई थी जिसके प्रमुख पुरोहित रामनाथ थे। भटियाणीजी को पुरोहित रामनाथ फूटी आंख न सुहाते थे और वह हर प्रकार से उन्हें खेतड़ी से निकाल वाहर करने पर पर तुली हुई थीं। किन्तु पुरोहित रामनाथ की स्थिति भी वड़ी मजवूत थी। उन्हें राजपूताना के ए० जी० जी० कर्नल सदरलैंड ने नियुक्त किया था। यह समाचार मिलने पर कि उन पर आये दिन अनुचित दवाव डाला जा रहा है और माजी भटियाणीजी अवांछित हस्तक्षेप कर रही हैं, जयपुर के रेजीडेन्ट ने शेखावाटी ब्रिगेड को खेतड़ी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। यह ब्रिगेड इस प्रदेश में चोर-डाकुओं पर कावू पाने और शान्ति-व्यवस्था वनाये रखने के लिये ही

संगठित की गई थी। इसके वार्षिक व्यय का एक बड़ा अंश—५१,५०० रु० शेखावाटी के सरदारों के ही जिम्मे था और वे यह रकम अपनी प्रजा से ही वसूलते थे। राजा फतहसिंह के खेतड़ी की गद्दी पर बैठने के आसपास ही इस ब्रिगेड को घटाकर पैदल सैनिकों का एक रेजीमेन्ट बना दिया गया था और उसका सारा खर्चा अंग्रेज सरकार का ही दायित्व हो जाने से शेखावत सरदार एक भारी बोझ से मुक्त हो गये थे।

खेतड़ी पर इस ब्रिगेड के धावे का यह परिणाम निकला कि पुरोहित रामनाथ बदस्तूर अपने पद पर बने रहे और भटियाणीजी को खेतड़ी से हटाकर जयपुर के 'खेतड़ी हाउस' में रखा गया। पांच साल बाद वह फिर खेतड़ी लौटीं तो सही, किन्तु कुछ ही महीनों बाद उनकी मृत्यु हो गई।

पुरोहित रामनाथ भी अधिक जीवित न रहे और उनके पुत्र गंगाराम में इतनी क्षमता नहीं थी कि वे परस्पर विरोधी गुटों और कुचक्रों के बीच राज चला पाते। राणावतजी ने उन्हें हटवाने के लिये सेठों से उधार लेकर एक लाख रुपये की रकम नजराने के तौर पर जयपुर भिजवाई। जयपुर दरबार ने इसे स्वीकार भी कर लिया और पुरोहित गंगाराम के स्थान पर ठाकुर जुझारसिंह को खेतड़ी में नियुक्त किया। जब ए० जी० जी० सर हेनरी लारेन्स को खेतड़ी में उधार ली गई रकम और नजराना स्वीकार कर लेने की सारी बात ज्ञात हुई तो उसने जयपुर के इस आचरण को अनुचित और अशोभनीय माना और नजराना लौटा देने की सलाह दी। जयपुर दरबार को १८५५ ई० में ६५,००० रु० की वह राशि खेतड़ी को लौटा देनी पड़ी।

रजवाड़ों में तब ऐसी ही उखाड़-पछाड़ चल रही थी। फिर खेतड़ी में तो नाबालिगी का शासक था। अब, टामस हेदरली नामक एक ईसाई खेतड़ी का मुख्तार बना। अपना धर्म त्यागकर वह मुसलमान से ईसाई बना था और पहले झज्झर के नवाब के यहां तहसीलदार था। शुरू-शुरू में तो उसने अच्छा काम किया, किन्तु फिर मनमानी करने लगा और हटा दिया गया। १८५५ में सर हेनरी लारेन्स खेतड़ी आया और उसने राज-काज की

अव्यवस्था देखकर माजी राणावतजी से पुनः हेदरली की नियुक्ति का अनुरोध किया, किन्तु माजी नहीं मानी। आये दिन मुसाहबतें बदलती रहीं। कभी कोई तो कभी कोई मुख्तार या मुसाहिब होता। इससे सब कुछ चौपट हो गया और जयपुर का निर्धारित कर (मामला) भी बकाया चलता रहा। जयपुर ने १८५७ के सिपाही विद्रोह के दिनों में तो शान्ति रखी, किन्तु १८५८ के मार्च माह में ६,००० प्यादों, ३५ तोपों और १,२०० घुड़सवार की एक पलटन कर-वसूली के लिये खेतड़ी भेजी। इस पलटन ने कोटपूतली को जा घेरा। वहां नियुक्त खेतड़ी के सैनिकों ने लगभग एक माह तक प्रतिरोध किया, किन्तु इतने बड़े सैन्यबल के सामने उन्हें आत्म-समर्पण करना ही पड़ा। चूंकि कोटपूतली ब्रिटिश सरकार से खेतड़ी को मिली हुई जागीर थी, वहां जयपुर की इस कारवाई को अनुचित और अनधिकार चेष्टा बताते हुये मामला पोलीटिकल एजेन्ट के पास पहुंचाया गया। पोलीटिकल एजेन्ट ने जयपुर ही का समर्थन किया तो खेतड़ी की ओर से शिकायत ऊपर गवर्नर-जनरल तक भेजी गई। इस पर विदेश मंत्री ने फैसला खेतड़ी के पक्ष में किया और कोटपूतली को ब्रिटिश सरकार की जागीर मानते हुये जयपुर को हिदायत की कि यह कोटपूतली से अपना अधिकार हटा ले और उसे खेतड़ी को लौटा दे। १८५६ की मई में यह आज्ञा जारी होने के कई महीने बाद जयपुर ने कोटपूतली के किले को खाली किया।

खेतड़ी के ऐसे दुर्दिनों में राजा फतहसिंह बालक से बड़ा हो रहा था। बालक राजा एकाग्र चित्त से विद्याध्यन में लगा था और इसमें संदेह नहीं कि इस समय को देखते हुये उसने अपने आपको सुशिक्षित किया। राजा फ़तहसिंह ने अंग्रेजी में अपना आत्मचरित लिखा था जो १८६६ ई० में कलकत्ता से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। ३३० पृष्ठों के इस ग्रन्थ में फतहसिंह ने तत्कालीन (१८४५-१८६६ ई०) राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का बड़ा सजीव वर्णन किया है। राजस्थान में तब मात्र यही एक राजा था जो अंग्रेजी में आपबीती को इस प्रकार

लिख सकता था। अपनी शिक्षा-दीक्षा और विद्या-व्यसन के संबंध में राजा फतहसिंह ने लिखा है:—

"मेरी प्रथम शिक्षा हिन्दी में हुई। मेरी मातृभाषा हिन्दी ही है। मैं दो वर्ष तक हिन्दी ही पढ़ता रहा। पश्चात् काजी सदरुद्दीन[1] मुझे फारसी पढ़ाने लगे। मेरा समय चार भागों में विभक्त किया गया था, जिसमें पहला भाग मुझे अध्ययन में व्यतीत करना पड़ता था, दूसरा भोजन में, तीसरा खेलने तथा मन बहलाने में एवं चौथा भाग शयन में। मेरे उस्ताद काजी साहब फारसी के प्रौढ़ विद्वान होने के साथ ही हकीम भी थे। उन्होंने मेरे लिए बहुत कष्ट उठाया। वे मेरे साथ दयालुता का व्यवहार करते थे। बैंत बहुत कम लगाते थे, परन्तु मैं दूसरे विद्यार्थियों के साथ खेलने नहीं पाता था। मेरे शिक्षक मेरे संबंध में कभी-कभी जो कुछ कहा करते थे, उससे यह मालूम होता था कि मैं पढ़ने में पिछड़ता नहीं था। मैं कभी किसी की बुराई करने की इच्छा नहीं रखता था और न मुझे दूसरों से मिलने-जुलने में ही आनन्द मिलता था। दिन-भर मैं एकान्त में बैठकर पुस्तकें पढ़ा करता था। मेरे अध्यापक मेरे आचरण पर पूरा ध्यान रखते थे। इस समय जब मैं उनका स्मरण करता हूं तब उन्होंने मेरे लिये जो कुछ किया उसके निमित्त उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता। उसी समय से मेरा मन एक निश्चित पथ पर चलने लगा और पढ़ना मेरा व्यसन हो गया। अपनी अवस्था के १०वें वर्ष में—सन् १८५५ ई०—में मैंने अंग्रेजी पढ़ना आरंभ किया। मेरे अंग्रेजी के अध्यापक सोनपत निवासी श्रीयुत गोविन्दसहाय नामक सज्जन थे। शिक्षक का परिवर्तन किया गया। दिल्ली कालेज से शिक्षा प्राप्त श्रीयुत ज्वालासहाय ने मुझे पढ़ाने का भार लिया। मेरे नये अध्यापक मुझे पढ़ाने में विशेष परिश्रम करते थे। मेरे पहले शिक्षक ने मुझे जो कुछ पढ़ाया था,

---

[1] यही काजी सदरुद्दीन बाद में बालक मोतीलाल नेहरू को फारसी पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए थे।

वह तोते की भांति रटन के अतिरिक्त कुछ न था। अब व्याकरण, भूगोल गणित तथा इतिहास की भी मुझे शिक्षा दी जाने लगी। "...:" मार्शमैन के हिन्दुस्तान के इतिहास को समाप्त कर मैं गोल्डस्मिथ रचित ग्रीस तथा रोम के इतिहास पढ़ने लगा। दो वर्ष में मैंने अच्छी तरह इन सबको पढ़ लिया।" ... ...मैंने फारसी के तथा तुलसीदासजी के काव्यों को केवल यों ही नहीं, उनकी सूक्ष्मताओं को समझकर पढ़ा है। मेरे एक मित्र थे। वे पोप की निम्नलिखित दो पंक्तियां सदा पढ़ा करते थे। मैं अपनी अवस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये उन पंक्तियों को यहां उद्धृत करता हूं:—

"It's education that forms the mind.
Just as a twig is bent, the tree's inclined."

"(शिक्षा के अनुसार ही मनुष्य की मस्तिष्क-शक्ति का विकास होता है। यदि शिक्षा बुरी हुई तो मस्तिष्क का भी पूर्ण विकास नहीं होता, जैसे कि कलम की डाली के टेढ़ेपन से वृक्ष भी टेढ़ा हो जाता है।)" ...मैं एक अच्छे और शिक्षित सज्जन की तलाश में था। मैंने आगरा कालेज के प्रिन्सिपल डा० अण्डरसन को उनके पुराने किसी विद्यार्थी को भेजने के लिये लिखा और उन्होंने मेरे पास राधाकिशन को चुनकर भेजा। सन् १८६० ई० के जनवरी मास में वे खेतड़ी आये और मैं शीघ्र उनसे शिक्षा पाने लगा। उन्होंने मुझे एलफिनस्टन का हिन्दुस्तान, ह्यूम का इंगलैण्ड और स्मिथ के नैतिक विचार (Moral sentiments) ग्रंथों को पढ़ाना आरंभ किया। इन क्लिष्ट ग्रन्थों को जिस पद्धति से उन्होंने मुझे पढ़ाया, उसके द्वारा वे सुगम हो गये। "...मेरे शिक्षक सदा मेरे साथ रहते थे। वे मुझे नौकरों के साथ भी मिलने या वार्तालाप करने नहीं देते थे। उससे मुझे जो लाभ हुआ उसको मैं अब समझता हूं। "Bad leads to worse and better tends to best" (बुरी संगति से आदमी बुरा और अच्छी से अच्छा बनता है)—यह उक्ति लाखों में एक है और मेरे युवक मित्रों को इसे कभी न भूलना चाहिए।"

राजा फतहसिंह के वयस्क होने के साथ जहां खेतड़ी की व्यवस्था में असमंजस की स्थिति दूर होकर सुधार होना चाहिए था, वहां एक नयी

ही पेचीदगी पैदा हुई जो राजस्थान के राजघरानों में कोई अनहोनी बात नहीं है। माजी राणावतजी की एक कृपापात्री दासी रतनरूप ने माता और पुत्र के बीच गहरा भेदभाव उत्पन्न करा दिया। मां के हृदय में प्रेम के स्थान पर ईर्ष्या और द्वेष के भाव भर दिये और बेटे का हाथ खर्च तक बन्द करा दिया। इधर १८६० ई० में टामस हेदरली ए० जी० जी० के हुक्म से पुनर्नियुक्त होकर बड़े रोबदाब से फिर खेतड़ी आ गया था। अब वह बड़ा ढीठ और घमण्डी भी हो गया था। तरुण फतहसिंह के लिये यह बड़ी अग्नि परीक्षा का समय था। माता भी कुपित और शासन का सूत्रधार भी स्वेच्छाचारी और स्वार्थी।

राजा फतहसिंह ने बड़े धैर्य से इस कठिन समय का सामना किया। अपने कुछ विश्वस्त लोगों के साथ वह खेतड़ी से रवाना हुआ। और देवली जाकर ए० जी० जी० जार्ज लारेन्स से मिला। जयपुर के पोलीटिकल एजेन्ट मेजर जे० सी० ब्रुक भी वहीं थे। ब्रुक ने राजा फतहसिंह को ए०-जी० जी० से मिलाया और खेतड़ी की स्थिति पर उसके विचार सहानुभूतिपूर्वक सुने। ए० जी० जी० को राजा फतहसिंह का अंग्रेजी संभाषण भी खूब सुहाया।

लगभग दो माह बाद राजा फतहसिंह मेजर ब्रुक के साथ खेतड़ी लौटा तो ब्रुक ने एक विभाग राजाजी को संभलाते हुए कहा कि यदि इस विभाग का प्रबन्ध ठीक रहा तो आपको पूर्ण अधिकार दे दिये जायेंगे। राजा फतहसिंह ने इस विभाग को भली-भांति संभाला, जिससे उसके अधिकार-प्राप्ति का समय सन्निकट आया।

इस अधिकार-प्राप्ति के लिये राजा फतहसिंह को जुलाई, १८६१ में जयपुर जाना पड़ा जहां महीने के अन्त में वह महाराजा रामसिंह के दरबार में उपस्थित हुआ। अपने आत्मचरित में वह लिखता है: "मैंने १२ अगस्त, १८६१ को खेतड़ी का पूर्ण शासनाधिकार ग्रहण किया। पोलीटिकल एजेन्ट की अनुमति के अनुसार राज्य की मुहर तथा आवश्यक कागज-पत्र मेरे हाथों में सौंप दिये गये। अधिकार पाने के बाद मेरा पहला काम हेदरली

को निकालने का प्रबन्ध करना था। मैं उसकी उद्दण्डता से इतना विरक्त हो गया था कि उसे सौजन्य की कुछ शिक्षा देना चाहता था। उसने मुझे इतना उद्विग्न कर डाला था कि मैं उसे निकाले विना रह नहीं सकता था और अन्त में मैंने उसे निकाल ही दिया। जिन लोगों ने मेरी अब तक उपेक्षा की उनसे वदला लेना मेरी यौवन-सुलभ मानसिक उत्तेजना का प्रकृत फल था।"

फरवरी, १८६० में हेदरली की पुर्ननियुक्ति के कुछ आगे-पीछे ही वावू राधा किशन राजा फतहसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी वनाया गया। यह वड़ा सिद्धान्तहीन और कुचक्री जीव था। वह आरंभ से ही इस उखाड़-पछाड़ में लगा था कि येनकेन प्रकारेण मुसाहिव या दीवान का ओहदा उसको मिले। उसने एक और चलती रकम, जोधपुर के व्यास महाराम की मिलीभगत से युवक राजा के कान हेदरली के विरोध में खूव भरे थे और इसी का नजीजा था कि राजा फतहसिह देवली जाकर ए० जी० जी० से मिला। यह व्यास महाराम आउवा ठाकुर खुशालसिंह[1] के साथ निर्वासित था और खेतड़ी में ही ठहरा हुआ था।

अन्ततोगत्वा, राजा फतहसिंह का परीक्षा-काल समाप्त हुआ और १८ अगस्त १८६१ को उसे खेतड़ी का पूर्ण शासनाधिकार सौंप दिया गया। २४ अक्तूवर, १८६१ को उसे ब्रिटिश सरकार से भी रोवकार मिल गया जिसमें कोटपूतली पर उसके अधिकार की संपुष्टि की गई थी।

राजा फतहसिह ने पहला काम सचमुच टामस हेदरली को हटाने का ही किया जिसे फिर भरतपुर में नौकरी मिल गई। पारखी फतहसिंह को यह समझने में भी देर न लगी कि वावू राधाकिशन की आन्तरिक इच्छा क्या थी और यदि वह पूरी हो जाती तो वह कितनी वड़ी विपत्ति खड़ी कर देता। राधाकिशन को अन्त में प्राइवेट सेक्रेटरी के पद से हाथ धोना पड़ा। उसकी जगह आये आगरा के पण्डित नन्दलाल नेहरू जो आयु में राजा

---

[1]यह (खुशालसिंह) राजा फतहसिंह का श्वसुर था.

फतहसिंह से कोई दो साल छोटे होंगे। जयपुर स्थित खेतड़ी के वकील ठाकुर सौभागसिंह को जयपुर में रहते हुए ही मुसाहिब का रुतबा दिया गया और खेतड़ी में चिड़ावा लाला हरनरायण श्रीमाल तथा ज्वालासहाय को जो तीन साल से राजा फतहसिंह का अध्यापक था, राजस्व विभाग और अदालत का हाकिम बनाया गया।

यह व्यवस्था साल भर से कुछ ही अधिक चल पाई। अब मुंशी हरबख्श को, जो खेतड़ी के ही एक पुराने और जाने-माने अधिकारी थे, ठाकुर सौभागसिंह के स्थान पर जयपुर में नियुक्त किया गया और पण्डित नन्दलाल नेहरु को दीवान बना दिया गया जो राज के सभी विभागों के काम-काज के लिये उत्तरदायी थे। मुंशी ज्वालासहाय अब राजा फतहसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी बने।

१८६२-६३ में युवक नन्दलाल नेहरू की इस नियुक्ति ने आगे चलकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले प्रयाग के नेहरु परिवार को राजस्थान के उस राजघराने के निकट सम्पर्क में ला दिया जिसके उत्तराधिकारी और पण्डित मोतीलाल नेहरू के समकालीन राजा अजीतसिंह को युग-पुरुष स्वामी विवेकानन्द का मित्र और प्रोत्साहक होने का भी गौरव मिला।

५. संयोग और सुयोग

पण्डित नन्दलाल का खेतड़ी आना एक संयोग ही था जो खेतड़ी के राजा फतहसिंह और स्वयं नन्दलाल और उनके परिवार के लिये भी तव वड़ा सुयोग सिद्ध हुआ। युवक राजा फतहसिंह अपनी छोटी-सी आयु में ही तव तक वड़ा कष्टप्रद समय देख चुका था और उससे दो वर्ष छोटे पण्डित नन्दलाल को साथ लेकर उसने जहां खेतड़ी के लिये शासन-सुधार और उन्नति का एक नया मार्ग प्रशस्त किया वहां १८५७ में स्वाधीनता संग्राम में विस्थापित और विश्रृंखल नेहरू परिवार को भी नये सिरे से पुनः संस्थापित होकर अपनी आजीविका के प्रति आश्वस्त होने का अवसर प्रदान किया जिसका लाभ उठाकर इस काश्मीरी युवक ने अपने छोटे भाई मोतीलाल को पुत्र के समान पाला-पोसा और सुयोग्य वनाया।

नेहरू परिवार के सभी इतिहासकारों और संस्मरण लेखकों ने स्वीकार किया है कि इस परिवार के पुराने कागज-पत्र और दस्तावेज १८५७ के गदर में नष्ट हो गये। १९१६ ई० में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने सवसे वड़े भाई और परिवार के सवसे वयोवृद्ध सदस्य ६८-वर्षीय पण्डित वंशीधर नेहरू से पूछताछ कर अपने परिवार का जो संक्षिप्त परिचय[1] लिखा था उसके अनुसार पण्डित राज कौल कश्मीर में उनके पूर्व-पुरुष थे जो अपने समय में संस्कृत और फारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे। मुगल वादशाह फर्रुखसियर जव कश्मीर गया था तो राज कौल की विद्वत्ता से प्रभावित

[1]मोतीलाल नेहरू वर्थ सेंटीनेरी सोवनिर, १९६१

होकर उसने उन्हें दिल्ली चलने का आग्रह किया और १७१६ ई० के लगभग राज कौल का परिवार दिल्ली आ बसा। पण्डित राज कौल को बादशाह से कुछ गांवों की जागीर और शहर में होकर बहने वाली नहर के किनारे एक मकान् रहने के लिए मिला। नहर के किनारे रहने के कारण ही वह राज कौल-नेहरू कहलाने लगे और कालान्तर में उनके परिजनों के नाम के आगे से "कौल" तो जाता रहा और केवल "नेहरू" रह गया।

पण्डित मोतीलाल नेहरू के ही शब्दों में बादशाह फर्रुखसियर की हत्या के बाद मुगल बादशाहत और देश की जैसी अनिश्चित परिस्थितियां बनीं, उनमें राज कौल के वंशजों को भी भाग्य के अनेक उतार-चढ़ाव देखने पड़े जिनके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हां, यह अवश्य पता चला है कि मोतीलाल नेहरू के परदादा और राजकौल के पौत्र पण्डित मौसाराम और उनके भाई पण्डित साहेबराम नेहरू के समय में राजकौल की जागीर घटते-घटते कुछ जमीनों की जमींदारी तक ही सीमित रह गई थी।

मोतीलाल नेहरू के दादा पण्डित लक्ष्मीनारायण नेहरू दिल्ली के शाही दरबार में कम्पनी सरकार के पहले वकील थे और उनके पुत्र पण्डित गंगाधर नेहरू (मोतीलाल नेहरू के पिता) १८५७ के गदर के कुछ पहले तक दिल्ली के कोतवाल थे। इस समय तक नेहरू परिवार को दिल्ली में रहते लगभग डेढ सौ वर्ष हो गये थे। गंगाधर नेहरू के एकमात्र उपलब्ध चित्र में वह एक मुगल सरदार की तरह लगते हैं, हालांकि सूरत-शक्ल उनकी कश्मीरियों की-सी ही है।[1] इस तस्वीर में वह मुगलों का दरबारी लिबास पहने और हाथ में एक टेढी तलवार लिये हुये हैं। मुंह पर घनी दाढ़ी है। एक कुलीन कश्मीरी ब्राह्मण के मुगल सरदार जैसे लगने में कोई अटपटी बात नहीं क्योंकि मुगल बादशाह अकबर के समय से ही शाही दरबार के तौर-तरीके और फैशन समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित हो

[1]मेरी कहानी, जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ ३

गये थे, फिर गंगाधर नेहरू तो शाही मुलाजिम और दिल्ली के शहर कोतवाल थे। हां, यह वास्तव में आश्चर्य की वात है कि गंगाधर नेहरू के दो पुत्र, वंशीधर और नन्दलाल जो १८५७ में किशोरावस्था को पार ही कर रहे थे, अंगरेजी वोलना जान गये थे। तव एक पाश्चात्य प्रभाव और अंगरेजी फैशन का वोलवाला वम्वई, कलकत्ता और मद्रास जैसे वन्दरगाही शहरों तक ही सीमित था और दिल्ली जैसे आन्तरिक नगर इस प्रभाव से मुक्त थे। अंगरेजी का यह ज्ञान इन युवकों के वड़ा काम आया।

स्वयं जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि १८५७ के गदर की वजह से नेहरू परिवार का सव सिलसिला टूट गया। खानदान के तमाम कागज-पत्र और दस्तावेज तहस-नहस हो गये।[2] अपना सव कुछ खो चुकने पर यह परिवार दिल्ली छोड़ने वाले और कई लोगों के साथ वहां से चल पड़ा क्योंकि सितम्वर, १८५७ में ब्रिटिश सेना के पुनः दिल्ली में प्रवेश कर लेने के वाद वहां किसी भी व्यक्ति का जीवन सुरक्षित नहीं था। ब्रिटिश सेनाधिकारियों की नजर में सभी स्वस्थ व्यक्ति वागी या विद्रोही थे और इस कारण गोली से उड़ा देने लायक थे। शहर में लूट-पाट भी कुछ ऐसी मची थी कि नादिरशाही अत्याचार भी इसके सामने फीके पड़ गये थे।

एक विख्यात लेखक के अनुसार दिल्ली की प्रायः समूची भारतीय जनसंख्या जो अनुमानतः डेढ लाख होगी, जान वचाने के लिये शहर के दरवाजों से वाहर निकल आई और कुतुव तथा निजामुद्दीन के मैदानों में भूख-प्यास और कड़ाके की सर्दी सहती हुई पड़ी रही। वहुत से लोगों ने दिल्ली को अलविदा कहने में ही भला माना और वे सुरक्षा और आश्रय की खोज में निकल पड़े।

इन्हीं लोगों में नेहरू परिवार भी था जिसमें उस समय पण्डित गंगाधर नेहरू और उनकी पत्नी जिओरानी, दो पुत्र वंशीधर और नन्दलाल और दो पुत्रियां पटरानी तथा महारानी थीं। इन लोगों ने आगरे का रास्ता

---

2 मेरी कहानी, जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ ३

पकड़ा, किन्तु वह अधिक दूर नहीं गये होंगे कि अंग्रेज सिपाहियों का एक दल उन्हें मिला। उन्हें शक हुआ कि दोनों लड़कियों में से एक किसी अंग्रेज की लड़की है जिसे यह लोग भगाये लिये जा रहे हैं। "कश्मीरी लोग आमतौर पर बहुत गोरे होते हैं, इसलिये फिरंगी सैनिकों को यह भ्रम हो गया कि नन्ही लड़की अंगरेज है और बाबा उसे भगाये लिये जा रहे हैं।"[1]

जवाहरलाल नेहरू ने भी इस घटना के अपने ब्यौरे में लिखा है कि "मेरे दोनों चाचा जवान थे और कुछ अंगरेजी जानते थे। इनके इस अंगरेजी जानने की बदौलत परिवार के लोग एक बुरी और अचानक मौत से बच गये। उन दिनों सरसरी तौर पर मुकदमा करके सजा ठोक देना एक मामूली बात थी इसलिये मेरे चाचा और परिवार के दूसरे लोग किसी नजदीकी पेड़ पर जरूर फांसी पर लटका दिये गये होते। मगर खुशकिस्मती से मेरे चाचा के अंग्रेजी ज्ञान ने मदद की जिससे इस फैसले में कुछ देरी हुई इतने ही में उधर से एक शख्स गुजरा जो मेरे चाचा वगैरा को जानता था, उसने उनकी और दूसरों की जान बचाई।"[2]

गंगाधर नेहरू अपने परिवार के साथ सकुशल आगरा पहुंच गये, किन्तु इस नये शहर में उनका क्या था : दिल्ली में वह अपनी नौकरी और उसके साथ सब-कुछ छोड़ आये थे। नेहरू परिवार के लिए वे दिन बड़ी तंगदस्ती और मुसीबत के रहे होंगे। विपत्ति अकेली नहीं आती और १८६१ ई० के आरम्भ में ही पण्डित गंगाधर नेहरू केवल ३४ साल की भरी जवानी में ही चल बसे तो यह दुर्दिन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गये। पिता की मृत्यु के तीन महीने बाद आगरा में ही बंशीधर और नन्दलाल के सबसे छोटे भाई मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ। वह दिन था ६ मई, १८६१। विधवा जिओ रानी ने अपनी मजबूरी और मुसीबत के बावजूद अपने सबसे छोटे लाल के लिए लाड-प्यार का सागर ही उड़ेल दिया। जवाहर-

---

[1] इन्दु से प्रधानमंत्री, कृष्णा हठीसिंह पृष्ठ २०

[2] मेरी कहानी, पृष्ठ २-३

लाल नेहरू के शब्दों में "वह बूढ़ी थीं और बड़ी दबंग थीं। किसी की ताव नहीं थी कि उनकी बात टाले। उनको मरे अब पचास वर्ष हो गये होंगे, मगर बूढ़ी कश्मीरी स्त्रियाँ अब भी उनकी याद करती हैं और कहती हैं कि वह बड़ी जोरदार औरत थी अगर किसी ने उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम किया तो बस मौत ही समझिये।"[1]

भाग्य ने फिर सीधी करवट ली और बंशीधर तथा नन्दलाल ने अपने पाँवों पर खड़े होकर इस डूबते हुए घर को बचा लिया। बंशीधर आगरा की सदर दीवानी अदालत में 'फैसला-नवीस' बन गये और फिर न्याय विभाग में विभिन्न पदों पर काम करते हुये सबार्डिनेट जज की हैसियत तक पहुंचकर सेवा-निवृत्त हुये। बंशीधर नेहरू की नौकरी ही ऐसी थी कि जगह-जगह उनका तबादला होता रहा जिससे वह परिवार के और लोगों से बहुत-कुछ दूर पड़ गये। नन्दलाल नेहरू को आगरा कालेज के प्रिंसिपल एण्डरसन की सहायता से खेतड़ी में अध्यापक की नौकरी मिली थी और खेतड़ी आगरा के कोई निकट नहीं थी, फिर भी माता और छोटे भाई के अतिरिक्त अपनी दोनों बहिनों को भी उन्होंने साथ रखा।

खेतड़ी में नन्दलाल ने अध्यापन का काम थोड़े ही समय तक किया। वहाँ शासनाधिकार संभालते ही राजा फतहसिंह ने उन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। खेतड़ी के शासनाधिकारी टामस हैदरली के विरुद्ध युवक राजा फतहसिंह के कान खूब भरे गये थे और यह काम किया था नन्दलाल से पूर्ववर्ती प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू राधाकिशन ने। अधिकार प्राप्त करने पर युवक राजा को यह समझने में देर न लगी कि टामस हैदरली को ही नहीं, षडयंत्रकारी बाबू राधाकिशन को भी खेतड़ी से हटा दिया जाना चाहिये। उन्होंने एक-एक कर दोनों की खेतड़ी से छुट्टी कर दी। पण्डित नन्दलाल की योग्यता, व्यवहार और निष्ठा से राजा फतहसिंह इतने प्रभावित हुये कि साल भर के भीतर-भीतर ही उन्हें दीवान बना

[1]मेरी कहानी, पृष्ठ ३

दिया, जो शासन के सभी विभागों के लिये उत्तरदायी थे ।

इस प्रकार जो संयोग था, वह सुयोग में परिणत हुआ । राजा फतहसिंह और दीवान नन्दलाल की जोड़ी खूब बनी और अगले नौ वर्षों तक जबकि राजा फतहसिंह की ३० नवम्बर, १८७० को दिल्ली में मृत्यु हुई, इस युवक राजा और युवक दीवान ने ऐसी सूझबूझ और योग्यता के साथ रियासत का शासन-प्रबंध चलाया कि बड़े-से-बड़े अंग्रेज अधिकारियों ने उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की । उस जमाने के लिहाज से पण्डित नन्दलाल अच्छे अंगरेजीदां थे और राजा फतहसिंह ही ऐसे शासक थे जो ३३० पृष्ठों में अंगरेजी में अपना आत्मचरित लिख सकते थे । दोनों प्रायः समवयस्क और युवा, समान रूप से शिक्षित और योग्य तथा अपने कार्य-कलाप से सफलता प्राप्त करने के आकांक्षी थे । इसलिए दोनों में परस्पर प्रेम और विश्वास भी बढ़ता गया और खेतड़ी के शासन-संचालन को बड़ी रियासतों तक के लिये आदर्श माना गया । १८७० ई० के अन्त में जब पण्डित नन्दलाल ने राजा फतहसिंह की अकाल मृत्यु के बाद खेतड़ी छोड़ी तो अपनी प्रशासनिक उपलब्धियों के कारण उनमें इतना आत्म-विश्वास और मनोबल जाग्रत हो चुका था कि आगरा लौटकर उन्होंने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की और वहीं वकालत करने लगे । इस परिवर्तन ने न केवल पण्डित नन्दलाल को नौकरी से मुक्त कर दिया, अपितु वकालत के स्वतंत्र व्यवसाय में भी चमका दिया । १८७५ ई० में हाईकोर्ट आगरा से इलाहाबाद गया तो पण्डित नन्दलाल भी इलाहाबाद चले गये । छोटी-सी खेतड़ी के बाद इलाहाबाद जैसी ब्रिटिश प्रान्त की राजधानी ने उनके और सम्पूर्ण नेहरू परिवार के लिये नये और महान् अवसर उपस्थित कर दिये । बारह वर्ष के अन्दर नन्दलाल वकालत के पेशे में चोटी पर पहुंच गये ।[1]

पण्डित नन्दलाल जब तक जिये, खेतड़ी के अपने संयोग और सुयोग को उन्होंने कभी विस्मृत नहीं किया । उनकी बाद की सफलता का आधार

---

[1]पण्डित मोतीलाल नेहरू, मोहनलाल नेहरू, नवनीत, अगस्त १९५४

आखिर खेतड़ी ही था। जवान उम्र में वह कुछ कर-गुजरने की ताव लेकर खेतड़ी आये थे। विधवा मां, छोटे शिशु-भाई मोतीलाल और दो बहिनों का भार उन पर था जिसे खेतड़ी में रहकर ही उन्होंने सफलतापूर्वक वहन किया था। पता नहीं वे खेतड़ी से जाते भी या नहीं यदि राजा फतहसिंह की अकाल मृत्यु न हुई होती। उनके खेतड़ी से विदा होने के पीछे किस्सा यह था कि राजा फतहसिंह प्रायः अस्वस्थ रहने लगे थे और मई, १८६९ ई० में वे अपनी चिकित्सा और स्वास्थ्य सुधार के लिये खेतड़ी से बाहर जा चुके थे। १८७० के नवम्बर में जब मसूरी में रहते हुये भी उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरने लगा तो पण्डित नन्दलाल और अन्य सलाहकारों ने खेतड़ी लौटने का निश्चय किया। राजा फतहसिंह इस परामर्श के अनुसार लौट ही रहे थे कि ३० नवम्बर, १८७० को दिल्ली में उनका देहान्त हो गया। पण्डित नन्दलाल और दूसरे अधिकारी राजा के शव को एक बन्द गाड़ी में खेतड़ी लेकर आये और वहीं दाह-क्रिया सम्पन्न की।

राजा फतहसिंह के कोई पुत्र नहीं था और अपने जीवन-काल में ही वे अलसीसर (शेखावटी) के स्व० ठाकुर छत्रसिंह के लड़के अजीतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर चुके थे। पण्डित नन्दलाल ने दिवंगत राजा की इच्छा के अनुसार अलसीसर से शीघ्रातिशीघ्र अजीतसिंह को बुलवा भेजा। और जयपुर सूचना भेजने में जानबूझकर विलम्ब किया। जब जयपुर से ब्रिटिश रेजीडेंट ब्रेडफोर्ड खेतड़ी पहुंचा तो अजीतसिंह को गद्दी पर बैठाने की सब तैयारियां हो चुकी थी। रेजीडेंट को उत्तराधिकार का प्रश्न निपटाना शायद इस प्रकार नहीं भाता था, किन्तु दीवान नन्दलाल और राजा फतहसिंह के अन्य विश्वस्त अधिकारियों ने जिस युक्ति और कौशल से नये राजा को खेतड़ी बुलवा लिया था उसमें कैप्टेन ब्रेडफोर्ड के सामने इस गोदनशीनी और उत्तराधिकार की पुष्टि कर देने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। राजा अजीतसिंह को खेतड़ी मिली, किन्तु रेजीडेंट की नाराजगी को देखते हुये नन्दलाल ने खेतड़ी छोड़ना ही उचित समझा। फिर भी खेतड़ी से नन्दलाल का जैसा लगाव

रहा था, उसे उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुज पण्डित मोतीलाल नेहरू ने भी पूरी तरह निभाया। राजा अजीतसिंह से पण्डित मोतीलाल नेहरू की गहरी मित्रता रही। नन्दलाल के द्वितीय पुत्र मोहनलाल नेहरू के अनुसार वह (मोतीलाल) जब कभी खेतड़ी जाते तो वहां उनका स्वागत जोर-शोर से होता था।[1]

नन्दलाल की मृत्यु भी अचानक ४२ वर्ष की आयु में अप्रैल, १८८७ ई० में हुई। अपने पीछे वह पत्नी नन्दरानी और पांच पुत्र बिहारीलाल, मोहनलाल, श्यामलाल, किशनलाल और ब्रजलाल और दो पुत्रियां छोड़ गए थे। इन सबको युवक मोतीलाल ने वकालत के पेशे में कड़ी मेहनत से धन कमाकर उसी प्रकार पाला-पोसा और शिक्षित व योग्य बनाया जिस प्रकार नन्दलाल ने खेतड़ी की नौकरी करते समय बालक मोतीलाल को सुयोग्य बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

---

[1]नवनीत, अगस्त, १९५९.

६. सुधार और सुव्यवस्था : दीवान नन्दलाल

खेतड़ी के राजा फतहसिंह को अक्टूबर, १८६१ में पूर्ण शासनाधिकार देने के समय जयपुर के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर जे० सी० ब्रुक ने उन्हें सबसे पहले कर्जदार रियासत को ऋण-मुक्त करने की ताकीद की थी। अपनी मर्जीदान दासी, रतनरूप की कुमति और कुटिल परामर्श पर चलकर माजी राणावतजी ने खेतड़ी को प्राय: तीन लाख रुपये के कर्जभार के नीचे ला दिया था और राजा फतहसिंह को वयस्क होने पर यह भार उतारने की महती जिम्मेदारी उठानी पड़ी। राजाजी ने टामस हैदरली जैसे स्वेच्छाचारी और बाबू राधाकिशन जैसे कुचक्री अधिकारियों से छुटकारा पाकर इस कर्जे से मुक्त होने का यत्न आरंभ किया। अब आगरा से आये हुये युवक नन्दलाल उनके दीवान और विश्वस्त सलाहकार थे। दीवान नन्दलाल के परामर्श से राजा फतहसिंह ने अपना निजी व्यय न्यूनतम कर दिया। जिन लोगों को ऋण देना था, उन्हें कुछ गांव संभलाये गये ताकि उनकी मालगुजारी से वे अपनी रकम वसूलते रहें।

राजा और उनके दीवान जब इस प्रकार ऋण चुकाने के प्रयत्न कर रहे थे तो माजी राणावतजी पुत्र के लिये नित नयी उलझनें पैदा कर रही थीं। माजी की धन की भूख बराबर बढ़ती जाती थी। अपने निर्वाह करने के लिये जो जागीर या गांव माजी को मिले हुये थे, उनसे वह संतुष्ट नहीं थीं और मनमाने ढंग से अन्य अच्छे-अच्छे गांवों को दबा रही थीं। माजी ने पपुरना गांव में अपने महल को अच्छा-खासा दुर्ग बना लिया था, जहां उसके अपने रक्षक, सनिक और दूसरा अमला बढ़ता जाता था, जैसे यह

खेतड़ी की प्रतिद्वंद्विता में दूसरी राजधानी ही वनने जा रही हो। माजी ने पुत्र के विरुद्ध मुकदमा भी दायर किया, किन्तु प्रमाणाभाव में पोलिटीकल एजेन्ट ने उसे रद्द कर दिया।

अक्टूवर, १८६२ में माजी की ओर से युवक राजा और उनके शासन प्रवन्ध को चुनौती देने की आखिरी चेष्टा की गई और वह भी सशस्त्र। पपुरना में माजी के उद्दण्ड और शहजोर कर्मचारियों ने वहुत से जमींदारों को अपनी ओर फोड़ लिया तथा सैनिक शक्ति संगठित करने लगे। पपुरना ववाई तहसील में खेतड़ी से केवल छह मील दूर है। यहां ऐसी गतिविधियां युवक राजा के हित में किसी भी प्रकार उचित नहीं थीं, किन्तु माजी के आदमी राजा के कर्मचारियों को उधर प्रवेश भी नहीं देना चाहते थे। पपुरना में माजी के महल का विशाल प्रांगण जव विद्रोहियों का केन्द्र वन गया और समझाने-वुझाने की सारी कोशिशें वेकार गईं तो दीवान नन्दलाल ने ईंट का जवाव पत्थर से देने की नीति अपनाने की राय दी और कुछ सैनिक तथा तोपें विद्रोहियों का दमन करने के लिये पपुरने भेजी गईं। अच्छा-खासा युद्ध ही होगया क्योंकि माजी के आदमी विना प्रतिरोध के समर्पण करने के लिये तैयार नहीं थे। १६ अक्टूवर, १८६२ को अन्ततः फतहसिंह के दल को सफलता मिली और विद्रोही तितर-वितर हो गये।

मेजर ब्रुक खेतड़ी आया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जव तक माजी राणावतजी खेतड़ी या पपुरना में रहेंगी, ऐसी अशांतिमूलक और खतरनाक घटनाएं होती रह सकती हैं। अतः माजी को जयपुर पहुंचाने की व्यवस्था की गई और १८६२ के वाद वह जयपुर-स्थित खेतड़ी हाउस ही रहीं। माजी के निर्वाह के लिये दस हजार रुपये वार्षिक भत्ते की व्यवस्था की गई थी, किन्तु उस अभिमानिनी महिला ने इसे लेने से इन्कार किया और अपनी गांठ की पूंजी तथा जेवरात से ही अपनी शेष जिन्दगी विताई।

इसके दो वर्ष वाद पोलिटीकल एजेन्ट मेजर डवलू० एच० वैनान शेखावाटी के दौरे पर आने वाले थे और राजा फतहसिंह तव दिल्ली जाने

का विचार कर रहे थे। जयपुर के वकील ने बड़ी कुटिलता से पोलिटीकल एजेन्ट को यह चुगली खाई कि खेतड़ी का राजा उसके प्रति अवज्ञा का भाव रखता है और इस दौरे के समय वह जान-बूझकर खेतड़ी से चला जाना चाहता है। खेतड़ी में यह समाचार मालूम हुआ तो दीवान नन्दलाल ने राजा फतहसिंह को यह सलाह दी कि वे पोलिटीकल एजेन्ट से मार्ग में ही जाकर मिल लें और जो शरारत उनके विरुद्ध जयपुर में की गई है, उसका निराकरण वे पोलिटीकल एजेन्ट से दो-टूक बात करके करें।

राजा फतहसिंह तुरन्त ही खेतड़ी से रवाना होकर उदयपुर (शेखावाटी) की घाटी में मेजर बैनन से जा मिले। राजा को अपने से मिलने के लिये इतनी दूर आया देखकर पोलीटिकल एजेन्ट ने जयपुर के वकील को उसकी झूठी और शरारतपूर्ण शिकायत के लिये खासी लताड़ दी। राजा फतहसिंह इस दौरे में कई दिनों तक पोलिटीकल एजेन्ट के साथ रहे। वे अच्छी अंग्रेजी जानते थे और बोल सकते थे, इसलिये मेजर बेनन से उनकी खूब अच्छी पटी और दोनों अच्छे मित्र बन गये। प्रायः मेजर बेनन और राजा फतहसिंह एक ही गाड़ी में यात्रा करते और खूब हिलमिलकर वार्तालाप करते थे। अंगरेजी न जानने वाले शेखावाटी के कुछ सरदार तो इस संभाषण को प्रायः अपने विरुद्ध मानते और दूसरे जिन्हें पोलिटीकल एजेन्ट के पीछे-पीछे घोड़ों या ऊंटों पर चलना पड़ता, अपने आपको अपमानित और क्षुद्र समझते। इन लोगों ने यहां तक अफवाह उड़ाई कि खेतड़ी का राजा तो क्रिस्तान बन गया है, तभी वह पोलिटीकल एजेन्ट के इतना मुंह लग गया है।

कोटपूतली से जयपुर की सेनायें हटाये जाने के ब्रिटिश आदेश के समय से ही जयपुर दरबार खेतड़ी से प्रायः रुष्ट ही रहा करता था, किन्तु ब्रिटिश सरकार और अंग्रेज अधिकारियों के साथ अच्छा मेलजोल रखना ही खेतड़ी के हित में था। दीवान नन्दलाल और राजा फतहसिंह ने यही किया।

राजा फतहसिंह को मेजर बेनन ने बताया कि वे स्वयं और जयपुर के

महाराजा रामसिंह जल्दी ही कलकत्ता जाने वाले हैं और यदि वे (राजा फतहसिंह) भी भारत की तत्कालीन राजधानी में आये तो वे बड़ी खुशी के साथ उन्हें वायसराय और गवर्नर-जनरल सर जान लारेन्स से मिलायेंगे। दीवान नन्दलाल ने राजा फतहसिंह को निःसंकोच ऐसा करने की राय दी क्योंकि यह एक बड़ा अवसर था। राजा फतहसिंह जयपुर महाराजा के पहुंचने से पहले ही कलकत्ता पहुंच गये।

मेजर वेनन सर जान लारेन्स के रिश्तेदार थे और उन्होंने ३ दिसम्बर १८६४ को सवेरे ही राजा फतहसिंह को वायसराय से मिलवा दिया। इस मुलाकात में राजा फतहसिंह को धड़ल्ले से अंगरेजी बोलते देखकर वायसराय को बहुत खुशी हुई। राजा फतहसिंह की मुलाकातें विदेश सचिव, सर विलियम मुइर, बंगाल के लेफ्टिनेंट-गवर्नर ग्रे, गृह सचिव बेली तथा अन्यान्य उच्चाधिकारियों के साथ भी हुईं। जयपुर के महाराजा ने यह सब जाना तो क्षुब्ध हुए, किन्तु मेजर वेनन राजा के गाढ़े मित्र हो चुके थे, इसलिये उनसे खेतड़ी के विरुद्ध कुछ भी करते-धरते नहीं बना।

दीवान नन्दलाल की अंग्रेजों से मेलजोल बढ़ाने की इस नीति ने राजा फतहसिंह को उनकी आंखों में काफी ऊंचा चढ़ा दिया और स्वयं फतहसिंह का दृष्टिकोण व्यापक बन गया। साधारण सीमित साधनों वाले अपने छोटे से राज्य में तब इस राजा और उसके युवा दीवान ने शासन-सुधार और विकास के अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जिनसे खेतड़ी का नाम सब रजवाड़ों में उजागर हो गया।

उस समय तक मालगुजारी ठेकेदारों द्वारा वसूल की जाती थी और एक प्रकार से सारी खेतड़ी रियासत ही ठेकेदारियों में बंट गयी थी। ठेके लेने में नीलाम की भांति 'बढ़े सो पावे' वाली कहावत चरितार्थ होती थी। इस तरह बढ़-बढ़कर ठेके लेने वाले ठेकेदारों से जनता और किसानों का कोई भी हित-साधन कैसे हो सकता था? दीवान नन्दलाल ने ठेकेदारी की कुप्रथा समाप्त कराई और जमीन की पैमाइश कराकर जमाबन्दी नियत की। दीवानी और फौजदारी के महकमे तब तक नाम के लिए अवश्य थे,

किन्तु उनमें कोई नियमवद्धता और सिलसिला नहीं था। अव दोनों प्रकार के मुक़दमों की सुनवाई के लिए अलग-अलग अदालतें बनाई गईं। जन-साधारण के लाभार्थ नई सड़कें वनवाई गईं और पुरानी का सुधार करवाया गया। खेतड़ी में अस्पताल और स्कूल खोले गये जिसमें संस्कृत, हिन्दी उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा देने की समुचित व्यवस्था थी। हिन्दी-उर्दू पढ़ाने के लिये एक स्कूल कोटपूतली में भी खोला गया। इन स्कूलों में विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिये विभिन्न पारितोषिक भी दिये जाते थे।

यह सब बातें आज तो नगण्य सी प्रतीत होती हैं, किन्तु जिस समय खेतड़ी में यह सब कुछ हुआ, तत्कालीन राजपूताना की वड़ी-वड़ी रियासतों में भी यह वड़ी वातें मानी जाती थीं। मेजर वेनान ने १४ मई, १८६६ को खेतड़ी की शासन व्यवस्था के पूर्ण निरीक्षण के वाद राजपूताना के ए० जी० जी० को इस आशय का एक टिप्पण भेजा जिसके महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे :—

"६ नवम्बर, १८६४, के अपने पत्र में मैंने आपका ध्यान खेतड़ी के राजा फतहसिंह के प्रशंसनीय आचरण की ओर आकर्षित किया था—वह अपनी अंग्रेजी की योग्यता को वढ़ा रहा है और ब्रिटिश प्रान्तों में प्रचलित कायदे-कानूनों को आदर्श मानकर अपनी रियासत के सुशासन के लिये ऐसे ही नियमोपनियम लागू कर रहा है।

"अपने शेखावाटी के दौरे में मुझे खेतड़ी जाने का अवसर भी मिला। राजा स्वयं अपने इलाके की सीमा पर आकर मुझसे मिला और कोटपूतली होकर अपनी राजधानी में ले गया। इस प्रकार मुझे उन सब सुधारों को देखने का अवसर मिला जो मेरे पिछली वार खेतड़ी आने के वाद से अव तक—एक वर्ष से कुछ अधिक समय में, लागू किये गये हैं। इनमें मालगुजारी की वसूली की नयी प्रणाली चालू की गई है। पहले सेठ-साहूकारों को ठेका देने का रिवाज आम था। अव इस प्रथा को समाप्त कर तीन साल की जमावन्दी लागू की गई है। इससे ठेकेदार किसानों के साथ मनमानी नहीं कर पायेंगे और किसान स्वयं ही इसे एकत्र करने के लिए उत्तरदायी

होंगे। भू-राजस्व के लिए लगान की जो राशि निर्धारित की गई है, वह बहुत वाजिब है और खेतड़ी के निवासी आम-तौर से इस व्यवस्था से संतुष्ट हैं।

"राजा का कहना है कि वर्तमान में यह योजना प्रायोगिक रूप से ही लागू की गई है और यदि सफल रही तो इसे अगले दस वर्षों के लिए बढ़ा दिया जायेगा।

"खेतड़ी की चालू वर्ष की अनुमानित आय और व्यय के आंकड़े बताते हैं कि इस वर्ष ३,५४,९८० रुपये की आय हुई है। यह आंकड़ा लगभग पांच वर्ष पूर्व के आंकड़े से जब राजा ने शासनाधिकार ग्रहण किया था, ६५,००० रु० अधिक है। आय में इस वृद्धि का श्रेय राजा को है। इससे सिद्ध होता है कि वह न केवल सचेत और सतर्क है, वरन प्रबन्ध-व्यवस्था की भी अच्छी योग्यता रखता है।

"...खेतड़ी के आय-व्यय के लेखे में शिक्षा, अस्पताल और सड़कों पर ११,००० रुपये के व्यय के आंकड़े संतोषप्रद हैं। कहा नहीं जा सकता कि इस क्षेत्र की अनेक छोटी-छोटी रियासतों में ऐसा और भी कोई उदाहरण है जहां के राजा ने ऐसी संस्थाओं के लिये अपनी आय का कम-से-कम अंश भी व्यय किया हो।

"१८६१ के अन्त में जब राजा ने शासनाधिकार ग्रहण किया था तो रियासत पर साढ़े चार लाख रुपये का कर्जा चढ़ा था।

...यह कर्जा अब घटकर ९३,००० ही रह गया है जो ब्याज सहित तीन साल में चुका दिया जायेगा।

"खेतड़ी में यह देखकर प्रसन्नता हुई कि एक न्यायालय की स्थापना की गई है जिसमें अपराधियों तथा ऐसे मामलों की सुनवाई होती है जो राजा के सामने आते हैं। ब्रिटिश प्रान्त का एक सुयोग्य निवासी भद्र-जन इस न्यायालय का न्यायाधीश है और हमारे दीवानी तथा फौजदारी कानूनों को आधार मानकर ही सभी मामले निपटाये जाते हैं। राजा के काम-काज का दैनिक समय नियत है और इसकी पाबन्दी रखी जाती है। अपने अव-

काश के समय में राजा अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन अनुशीलन करता है और इसके लिए एक वहुत अच्छा पुस्तकालय भी उसने वना रखा है। ..."[1]

व्रिटिश रेजीडेन्ट के इस टिप्पण पर राजपूताना के ए० जी० जी० कर्नल डब्लू० एफ० ईडन ने एक खरीता भेजकर राजा फतहसिंह और उसके शासन प्रवन्ध की भूरि-भूरि प्रशंसा की और भारत सरकार को उक्त टिप्पण सम्प्रेषित किया।

यह टिप्पण प्राप्त कर वायसराय ने भी वड़ा संतोष प्रकट किया और अक्टूवर, १८६६, को विदेश सचिव सर विलियम मुइर ने राजा फतहसिंह को एक खरीता भेजकर उसकी सराहना की।

"राजे साहव मुशफ्क मेहरवान दोस्तान सलामत रखे ईश्वर वमुजिव हुकम जनाव नवाव वायसराय का गवरनर जनरल साहव हिन्दुस्तान इज-लास कौन्सिल के पास उनके अंजट मुत अपने राजपूताने की रपोट इस मजवून की कि आपने अपनी रियासत का वोहुत अच्छा वन्दोवस्त किया है पोहची उसके देखने से जनाव मोसूफ को वोहुत खुशी हुई और मुझे आज्ञा हुई कि आपको इस वात की इत्तला दूं कि कारवार माल के वाजिव और मुनासव वंदोवस्त में और इस वात में कि रियासत का कर्ज वोहुत जल्दी अदा हो जाय आपने कोशिश और श्रम किया इससे आपकी वड़ी इज्जत और नेकनामी है। और खास करके सड़क और अस्पताल से जिसमें आपने न केवल वहुत सा रुपया ही खर्च किया, वल्कि अपने आप भी दिल लगाया और परिश्रम किया अलवत्ते आपका वन्दोवस्त वोहुत तारीफ के लायक है जनाव नवाव साहव मौसूफ और कौन्सिल के साहवों का यकीन है कि आप इसी तरह अपनी रैयत की तरक्की और आराम की तदवीरों में चिन्ता और परिश्रम से मसरफ रहें और जनाव साहव को यह भी उम्मेद है कि आपके

---

[1]Official Paper from Capt. now Major W. H. Beynow, Political Agent of Jeypore and Co. W, F. Eden, AGG for the States of Rajpootana addressed to the Highness Rajah Futteh Singh Bahadur of Khetree. Calcatta, July 1866.

अच्छे वन्दोवस्त को देखकर राजपूताने के और बहुत से रईस भी ऐसा ही करेंगे और सरकार अंगरेजी की भी बड़ी इच्छा यही है। ज्यादह क्या लिखा जाय।

विलिय म्यूर, सेक्रेटरी, गवर्नमेंट हिन्दोस्तान।"[1]

राजपूताना के राजनीतिक प्रशासन, १८६५-६७ की रिपोर्ट के लिये जो कुछ कहा गया है, वह भी राजा फतहसिंह और उसके योग्य दीवान नन्दलाल के शासन-प्रवन्ध की सफलता की सनद है। इस रिपोर्ट के ४१ वें पृष्ठ का सारांश इस प्रकार है।

"खेतड़ी के युवक राजा फतहसिंह के सुधार और उनकी उन्नतिशील नीति की प्रशंसा वायसराय-इन-कौंसिल ने की है और उनके सुधार और नीति सरकार के ध्यान में लायी गयी हैं। इन पांच वर्षों में जबसे शासन-भार उनके हाथों में सौंपा गया, उन्होंने अपने राज्य में अंग्रेजी न्यायालयों के आधार पर न्यायालय स्थापित कर हमारे कानून के आधार पर दीवानी और फौजदारी कानून प्रचलित किया है, जमीन का वन्दोवस्त किया है और स्कूल अस्पताल आदि स्थापित किये हैं। एक अच्छी सड़क बनाने के अतिरिक्त राज्य के साढ़े चार लाख रुपये का कर्ज भी चुकाया है। सुधार के इन सब कार्यों में राजा ने खास अनुराग दिखाया है। उनका प्रत्येक सुधार सफल हुआ है। सारांश कि शासन, पुलिस प्रवन्ध, लोगों की जान और माल की रक्षा की व्यवस्था आदि कार्य युवक राजा की बुद्धिमत्ता के परिचायक हैं।"

राजा फतहसिंह को शासनाधिकार प्राप्त होने और पण्डित नन्दलाल के दीवान बनने के पूर्व अल्पवयस्क राजाओं अथवा उनकी माताओं के शासन में खेतड़ी की स्थिति बड़ी अव्यवस्थित हो गई थी। प्रायः ३२ वर्षों तक खेतड़ी में वस्तुतः कोई राजा नहीं था। पूर्ण शासनाधिकार-प्राप्त राजा के अभाव में जयपुर रियासत के साथ इस चीफशिप या करद राज्य के

---

[1]मुरासलात खेतड़ी, लीथो, मुंशी ज्वाला सहाय

सम्बन्धों में जो स्वतंत्रता और स्वायत्तता चली आती थी, उसे भी आघात पहुंचा था। १८४३ ई० में पोलिटीकल एजेन्ट मेजर थर्सवी ने कुछ नियम वनाये थे जिनमें शेखावाटी के सरदारों या ठिकानेदारों के न्यायिक अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया था और खेतड़ी में एक कौंसिल नियुक्त की गई थी। एक अच्छी वात यह भी थी कि राजा फतहसिंह की वाल्यावस्था में राजपूताना के एजेन्ट टू दी गवर्नर-जनरल कर्नल सदरलैण्ड ने १८४६ ई० में यह लिखित आश्वासन दिया था कि ब्रिटिश सरकार नावालिगी के दौरान किसी भी हस्तक्षेप के विरुद्ध खेतड़ी के हितों की रक्षा करेगी।

शासनाधिकार प्राप्त करने पर युवक राजा फतहसिंह और युवा दीवान नन्दलाल ने न केवल आन्तरिक और वाह्य झगड़ों-वखेड़ों के वीच अपना रास्ता निकाला, वरन् खेतड़ी की अव्यवस्थित और विशृंखल दशा को भी सुव्यवस्थित और सुशासित किया। उस समय जो सुधारवादी और जनोपयोगी कार्य खेतड़ी में किये गये वे अनेक वड़ी रियासतों से भी उस समय अग्रगामी और अपने आप में क्रांतिकारी थे। खेतड़ी के अभिलेखों में संगृहीत लार्ड मिंटो, लार्ड वारलो और लार्ड विलियम वैंटिक जैसे वायसरायों ने खरीतों में इन शासन-सुधारों और जनहित कार्यों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। १८६८ ई० में तो वायसराय, लार्ड जॉन लारेंस से एक और खरीता आया जिसमें राजा फतहसिंह की लोक-हितकारी नीतियों तथा कोटपूतली का परगना सीधे ब्रिटिश सरकार से जागीर में प्राप्त होने के कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार से सीधा पत्र-व्यवहार करने की रिआयत का भी उल्लेख मिलता है। यह राजा फतहसिंह और दीवान नन्दलाल की एक वड़ी राजनीतिक और कूटनीतिक उपलब्धि थी।

१८६६ ई० में वायसराय सर जान लारेंस ने आगरा में एक वड़ा दरवार किया था जिसमें राजपूताना के राजाओं को भी आमंत्रित किया गया था। इस दरवार में वायसराय और गवर्नर-जनरल ने राजा फतहसिंह के सुशासन को अन्य राजा-महाराजाओं के लिये आदर्श और अनुकरणीय

वताया ।[1] वायसराय ने कहा :

"जयपुर में खेतड़ी के राजा ने अपने इलाके में जो वुद्धिमत्तापूर्ण सुधार और व्यवस्थाएं की हैं, उनके लिये उनका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया गया है । मैं जब भी किसी राजा के प्रशंसनीय आचरण की वात सुनता हूं तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती है और मैं इसे प्रकट करने का भी प्रयत्न करता हूं ताकि अन्य राजा-महाराजाओं को इसका अनुकरण करने का प्रोत्साहन मिले ।"[2]

राजा फतहसिंह को पर्यटन और नये-नये लोगों के संपर्क में आने का सदैव वड़ा उत्साह रहता था । उन्होंने न केवल राजस्थान के सभी भागों और प्रसिद्ध स्थानों का भ्रमण किया था, वरन् दो वार कलकत्ता भी गये थे । इन यात्राओं ने छोटी आयु में ही उन्हें वड़ा प्रौढ़, उदार दृष्टिकोण वाला, सुधार प्रिय और पुरुष-परीक्षक वना दिया था । उन्होने पण्डित नन्द-लाल को अपना दीवान वनाया, यह उनके पारखी होने का प्रमाण है, क्योंकि वे इस युवा कश्मीरी पण्डित से जो अपेक्षाएं करके चले थे, वे सभी पूरी हुईं ।

---

[1]भाषण का उद्धरण—मूल अंग्रेजी में था ।

[2]२१ नवम्बर, १८६७ को आगरा दरबार में सर जान लारेंस का भाषण ।

७. पण्डित मोतीलाल का बचपन

यह निश्चित है कि पण्डित नन्दलाल पूरे दस वर्ष खेतड़ी में रहे। इस अवधि में १८६२ से १८७० तक वे दीवान और उस रियायत के सर्वप्रमुख शासनाधिकारी थे। वैसे राजा का प्राइवेट सेक्रेटरी होना भी तब कुछ कम नहीं होता था। वह अपनी विधवा मां, पत्नी नन्दरानी (जिसके साथ उनका विवाह दिल्ली में गदर के दिनों में या नेहरू परिवार के दिल्ली छोड़ने के कुछ समय पूर्व ही बारह वर्ष की आयु में हुआ था) छोटे भाई मोतीलाल और बहिनों को भी खेतड़ी ले आये थे। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट लिखा है कि "मेरे पिता उन्हीं (नन्दलाल) के साथ रहे और उन्हीं की छत्रछाया में उनका लालन-पालन हुआ। दोनों का आपस में बड़ा प्रेम था और उसमें बंधु-प्रेम, पितृ-प्रेम और वात्सल्य का अनोखा मिश्रण था।" यह अनोखा मिश्रण स्वाभाविक था। मोती-लाल नन्दलाल से पूरे सोलह साल छोटे थे। अपने जन्म से ही उन्होंने पिता की जगह अपने दोनों बड़े भाइयों को ही देखा था और भाइयों में भी बंशीधर तो अपनी नौकरी के कारण दूर-दूर रहते थे और नन्दलाल ही बालक मोतीलाल को भाई की जगह भाई का और पिता की जगह पिता का प्यार देने वाले थे। १८६१ में पण्डित गंगाधर की मृत्यु के बाद जब नन्दलाल भी अपने पांवों पर खड़े हुये और खेतड़ी में सम्मानपूर्वक जम गये तो अपने परिवार का भरण-पोषण करना उनका पहला दायित्व ही नहीं, उस काल की भावनाओं के अनुसार धर्म भी था, जिसे युवक नन्दलाल ने एक संयुक्त परिवार के मुखिया के रूप में बखूबी निभाया।

कृष्णा हठीसिंह लिखती हैं—"पिताजी का लालन-पालन मेरे ताऊ नन्दलाल ने ही किया। जन्म से ही पिताजी उम्र में अपने से बहुत बड़े भाई के पास रहे और ठाठ से रहने का शौक भी शायद वहीं, खेतड़ी के राजा के दरबार में रहने के कारण पड़ा। दादी उन्हें बहुत चाहती थी और सिर चढ़ाए रहतीं। ऐसे में बच्चे का जिद्दी और गुस्सैल होना स्वाभाविक है। पिताजी भी बचपन में बहुत गुस्सैल थे। यह चारित्रिक विशेषता नेहरुओं में परम्परागत है, क्योंकि अपनी तेजमिजाजी के लिये हम सभी नेहरू प्रसिद्ध हैं।[1]

हम नहीं कह सकते कि तेजमिजाजी की चारित्रिक विशेषता और परम्परा कितनी पुरानी है पर नन्दलाल नेहरू की ख्याति कम-से-कम खेतड़ी में तो गुस्सैल या तेज-मिजाज होने की नहीं रहीं। उनके पिता गंगाधर नेहरू और पण्डित राज कौल तक के पूर्ववर्ती भी गुस्सैल और तेज-मिजाज के थे या नहीं, कौन जाने। हां, पण्डित मोतीलाल नेहरू की गुस्सैल प्रकृति और जवाहरलाल नेहरू का गुस्सा, हमारे देशवासियों का खूब जाना-पहचाना है और जब राजस्थान के साथ नेहरू परिवार के 'साख' और संबंध का कुछ विवेचन यहां कर रहे हैं तो इस चारित्रिक विशेषता का श्रेय राजस्थान को ही दें, इसका पुष्ट प्रमाण है।

मोतीलाल नेहरू अपने पिता गंगाधर नेहरू की मृत्यु के तीन माह बाद जन्मे थे और वे साल भर के भी नहीं हुए होंगे जब से माता जिओरानी उन्हें लेकर नन्दलाल के पास खेतड़ी आई थीं। इस शिशु को तब मां के स्तनों का दूध-पान करना चाहिये था, किन्तु अत्यधिक लाड़-प्यार करने के बाद भी माता जिओरानी अपनी इस सबसे छोटी सन्तान को दूध कहां से पिला सकती थीं? वात्सल्य कितना भी हो, पति वियोग के दुःखावेश में हिन्दू विधवा अपने आप विवश और असमर्थ हो जाती है। शिशु मोतीलाल के उचित पालन-पोषण के लिये स्तन-पान की अनिवार्य आवश्यकता

---

[1] इन्दु से प्रधानमन्त्री, कृष्णा हठीसिंह पृष्ठ २०

थी जो राजस्थान की परम्परागत 'धाय' प्रथा अपना कर पूरी की गई।

राजस्थान के इतिहास से जिनका परिचय है, वे जानते हैं कि यहां जहां महाराणा प्रताप और वीर दुर्गादास को स्मरण किया जाता है, पद्मिनी और हाडी रानी के बलिदान के गीत गाये जाते हैं, वहां पन्ना धाय की गाथा भी श्रद्धापूर्वक कही-सुनी जाती है। महाराणा सांगा के पुत्र उदय-सिंह को इस धाय ने अपने स्तनों का दूध ही नहीं पिलाया था, उसकी जान जब खतरे में देखी तो अपने 'जाये' पुत्र को उदयसिंह के कपड़े पहनाकर निर्दयी बनवीर की तलवार से कटवा देने में भी हिचक नहीं की थी। राजस्थान की 'धाय' का यह आदर्श जो 'पालित' के प्रति बताया गया, और कहां मिलेगा?

शिशु मोतीलाल के लिये खेतड़ी में धाय रखी गई जिसने स्तन-पान करा कर इस बालक को बड़ा किया। दूध का असर, कहते हैं, तीन पीढ़ी तक चलता है। यदि इस लोक-मान्यता में सचाई है तो कुलीन कश्मीरी घराने में जन्म लेने वाले मोतीलाल नेहरू ने वीर-प्रसविनी भूमि राज-स्थान की धाय का दूध पिया था और तीसरी पीढ़ी तक हम बराबर इस दूध का असर देख रहे हैं—गुस्सा, तेज-मिजाजी, ललकता स्वाभिमान, पौरुष और तेजस्विता—कुछ भी कहें और मानें इसे।

इस निबंध के लेखक ने १९५७ ई० में जब पहली बार नयी दिल्ली के तीनमूर्त्ति भवन में प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू से भेंट की और खेतड़ी से सम्बद्ध उनके पारिवारिक प्रसंगों की चर्चा आई तो उनसे एक प्रश्न यह पूछा था कि पण्डितजी, बताइये तो आपके स्वभाव के इस करारेपन के पीछे क्या रहस्य है? जब पण्डितजी मौन रहे तो लेखक ने ही कहा था: "यह राजस्थान का दूध है पण्डितजी, जो मोतीलाल जी ने पिया था। दूध का असर तीन पीढ़ी तक चलता है।" इस पर 'हें' कहकर जवाहरलालजी बाल-सुलभ सरलता से खिलखिला पड़े थे।

पण्डित जवाहरलालजी से तभी खेतड़ी आने और वह बालू का टीला देखने के लिये भी आग्रह किया था जिस पर मोतीलालजी ने कूद-

कूद कर अपना बचपन खिलाया था। खेद है कि स्वीकृति देने के बाद भी पण्डितजी खेतड़ी नहीं आ सके, फिर उन्हें सचमुच समय ही नहीं मिला। १९६२ में चीन का आक्रमण हो गया और फिर तो वह स्वयं भी स्वस्थ नहीं रहे।[1]

राजस्थान के इतिहास में अपनी दिलचस्पी के कारण मैंने इस सारी सामग्री को बरसों तक संभाल कर रखा है। खेतड़ी के साथ नेहरू परिवार के पुराने सम्बन्धों से मैं अवगत था और खेतड़ी के पुराने वाकआत रजिस्टरों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की प्रतिलिपियां तथा फोटो स्टेट कापियां भी मैं शेखावाटी के इतिहास के प्रसंग में प्राप्त कर चुका था।

जवाहरलालजी के निजी सचिव, सर्व प्रकाश ने मेरे पत्र के उत्तर में सूचित किया कि सितम्बर के दूसरे सप्ताह में, मैं प्रधानमंत्री से भेंट करने के लिये दिल्ली आ सकता हूं। यथा समय मैं दिल्ली पहुंचा और प्रधानमंत्री के निजी सचिव को अपने आगमन की सूचना दे दी। मैंने उनसे आग्रह किया कि मुलाकात का समय ऐसा रखें जब पण्डितजी थके हुये न हों। सर्वप्रकाशजी ने ऐसा ही किया और ९ सितम्बर, १९५७ को प्रातः तीनमूर्ति भवन के मुलाकाती कमरे में प्रधान मंत्री संभवतः सर्वप्रथम मुझसे ही मिले। वे चाय पीकर ही नीचे उतरे थे।

मैंने जवाहरलालजी को सबसे पहले पण्डित मोतीलाल का कई पृष्ठों का एक पत्र प्रस्तुत किया जो उन्होंने लन्दन से राजा अजीतसिंह को लिखा

---

[1]लेखक ने १९५७ के स्वतंत्रता दिवस की बधाई देते हुये प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर मिलने का समय मांगा था। इस मुलाकात का प्रयोजन जवाहरलालजी को वह कतिपय पत्र भेंट करना था जो स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिखे हुये थे।

१९४० ई० के आसपास जब मेरी पुस्तक "आदर्श नरेश" प्रकाशित हुई थी तो खेतड़ी की राजकुमारी श्रीमती चन्द्र कुमारी ने मुझे एक छोटा-सा बस्ता दिया था जिसमें उनके स्वर्गीय पिता राजा अजीतसिंह के निजी और महत्वपूर्ण कागज-पत्र थे। पण्डित मोतीलाल नेहरू के पत्र भी इसी बस्ते में मिले थे।

था। मंद मुस्कान के साथ जव पण्डितजी अपने पिता की लिखावट को पढ़ने में दत्तचित होने लगे तो मैंने इस पत्र की फोटोस्टेट प्रति उन्हें भेंट की और कहा कि यह आपकी नज़र है। पण्डितजी ने इसे स्वीकारते हुये मूल पत्र पुनः मेरे हाथ में थमा दिया। इसके अनन्तर मैंने मोतीलालजी का एक अन्य पत्र प्रस्तुत किया जो टाइप किया हुआ था। टाइप-राइटर का चलन तव हुआ ही था और इलाहावाद में पहले-पहल पण्डित मोती-लाल ही उसका उपयोग करने लगे थे।

इसके अतिरिक्त एक अन्य पत्र जिस पर 'प्राइवेट' शब्द अंकित था, मैंने जवाहरलालजी को और दिखाया। यह वस्तुतः उस पत्र की प्रतिलिपि थी जो मोतलालजी ने अपनी इंगलैण्ड यात्रा के विरोध में जाति-विरादरी वालों के वखेड़ा खड़ा करने पर अपने मित्र पण्डित पृथ्वीनाथ चक को लिखा था। मोतीलालजी ने इसमें प्रायश्चित के विरुद्ध अपने दृढ़ मनोभाव प्रकट किये थे। राजा अजीतसिंह के पास इसकी प्रति भेजने का उद्देश्य यह लगता है कि राजा अजीतसिंह को भी विलायत लौटने पर ऐसे ही विरोधी वातावरण का सामना करना पड़ा था। वे राजस्थान के पहले नरेश थे जो १८९७ ई० में इंगलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों की यात्रा पर गये थे और इसके विरोध में स्वयं जयपुर-नरेश महाराजा माधोसिंह के इशारे पर भावनायें भड़काई गई थीं। राजा अजीतसिंह ने भी इन विरोधी भावनाओं की कोई परवाह न करते हुये दृढ़ता का रुख अपनाया था।

इस मुलाकात में मैंने नेहरूजी को खेतड़ी के पुराने वाकआत रजिस्टर के एक पृष्ठ की फोटोस्टेट प्रति भी यह कहकर भेंट की थी कि आप वच्चों को वहुत प्यार करते हैं, जरा अपने वचपन की भी एक झांकी यहां देखिए: जव वे इस प्रति को वड़े गौर और दिलचस्पी के साथ देखते लगे तो मैंने कहा कि यह राजस्थान की चलती घसीट लिपि में है, आपको दिक्कत होगी, इजाजत दें तो मैं पढ़कर सुना दूं। पण्डितजी की इजाजत पाकर मैंने पढ़ना आरंभ किया :

"प्रयाग, सन् १८९२ ई०, २६ नवम्वर। पण्डित मोतीलालजी हौ

घर टेनिस खेलता रह्या। टावर बांका घर का आया ज्यांने ई मुजब — पण्डित नन्दलालजी का छोटा बेटा ब्रजलाल का हाथ में ५ रुपया और पण्डित मोतीलालजी का लड़का जवाहरलाल का हाथ में ५ रुपया दिया। पण्डित मोतीलालजी कै ही घर पर थाल तैयार होकर आया। २७ नवम्बर — पण्डित मोतीलालजी कै साथ म्योर कालेज देखा।" —वाकआत रजिस्टर खेतड़ी, पृष्ठ ३७०.

ज्योंही मैंने यह प.ा, पण्डितजी जैसे उछल पड़े और तपाक से बोले, "हां-हां यह मुझे याद है" मैंने कहा, आपकी याद बड़ी जबर्दस्त है क्योंकि तब आप अधिक से अधिक चार साल के होंगे। पण्डितजी ने उसी लहजे में दोहराया : हां मुझे बखूबी याद है।"

वाकआत रजिस्टर की यह टिप्पणी राजा अजीतसिंह की १८९२ ई० की प्रयाग-यात्रा के समय की थी जब राजाजी ने अपनी रियासत के स्वर्गीय दीवान के पुत्र और दीवान के अनुज तथा अपने मित्र पण्डित मोतीलाल के होनहार के हाथ में पांच-पांच रुपये दिये थे।

इसी मुलाकात में मैंने जवाहरलालजी से यह अनुरोध भी किया था कि खेतड़ी में प्रस्तावित "विवेकानन्द स्मृति मन्दिर" के उद्घाटन के लिये आपको तकलीफ देंगे और तभी आपको वह जगह भी दिखायेंगे जहां आपके पूज्य पिताश्री बचपन में दौड़ते और कूदते थे। प्रधान मंत्री ने इस पर स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर कहा था कि मौके पर याद दिलाना। यह मौका आया १९६३ ई० में। खेतड़ी के वर्तमान राजा सरदारसिंह ने जनानी ड्योढ़ी सहित दीवानखाना नामक राजमहल का दानपत्र १९५९ में रामकृष्ण मिशन के नाम किया और दो-तीन साल इन भवनों की मरम्मत में लग गये। १९६३ में विवेकानन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर यह स्मृति मन्दिर खोलने के लिये जवाहरलालजी से खेतड़ी आने का आग्रहपूर्वक निवेदन किया गया, किन्तु चीनी आक्रमण ने उन्हें बेतहाशा व्यस्त और क्षुब्ध कर रखा था। चाहते हुये भी वे खेतड़ी न आ सके। हम खेतड़ी वालों के और स्वयं उनके भी मन की मन में ही रह गई।

खेतड़ी में वालक मोतीलाल को अपने स्तनों का दूध पिलाने वाली धाय थी लक्ष्छीराम माली की पत्नी। उसके उन्हीं दिनों लड़का जन्मा था और वह स्वस्थ तथा धाय वनने के सर्वथा उपयुक्त समझी गई थी। जब लक्ष्मीराम वागवान को वुलाकर इस प्रसंग में वातचीत की गई तो वह इसे राज-कृपा-लाभ का साधन समझकर तुरन्त सहमत हो गया। लक्ष्मीराम की पत्नी मोतीलाल का भी वड़े स्नेह और दुलार के साथ लालन-पालन करने लगी। खेतड़ी आगमन के समय वालक मोतीलाल साल भर का भी न था और प्राय: ढाई-तीन वर्षो तक इसी धाय के दूध से हृष्ट-पुष्ट हुआ।

मोतीलाल का समवयस्क लच्छीराम का दूसरा लड़का था—तुला। तुला के वड़े भाई का नाम था खींवा। तुला से पांच वर्ष छोटा था हनुमान जिससे १९५१ में लेखक की वहुत वातें हुई थीं। खेतड़ी के वाकआत-नवीस स्वर्गीय लाला घीसालाल भी साथ थे।

हनुमान ने तव वताया था कि तुला तो लाला नामक पुत्र को छोड़कर दिवंगत हो चुका है। उसका (तुला का) जन्म संवत् १९१७ वि० (सन् १८६१ ई०) का था (यही पण्डित मोतीलाल नेहरू का जन्म संवत् है)। संयोग की वात है कि राजा अजीतसिंह भी इसी संवत् में जन्मे थे। लच्छीराम की सवसे छोटी पुत्री थी, भानी जो वगड़ (झुंझनूं) में विवाही गई थी।

हनुमान के अनुसार उसकी मां कहा करती थी कि "मैं दीवान जी का भाई मोतीलाल की धाय हूं। अर जद राजाजी-रानीजी की सवारी पिरागजी (प्रयाग) पधारी जणा मैं भी सागैं गई थी। ऊं वखत मोतीलाल की जोड़ायत म्हारो सासू जिसो मान कर्‌यो थो। मनैं गाड़ी में वैठार सैल कराई थी, मैं तो ज्याणूं जीवती ही सुरग पूंचगी थी।"

यह वात १८९१ ई० की जनवरी के प्रथम सप्ताह की है। तव राजा अजीतसिंह अपनी रानी के साथ पहली वार प्रयाग गये थे और पण्डित मोतीलाल की धाय भी उनके साथ थी। मोतीलाल की पत्नी स्वरूपरानी अपने पति को पोषित करने वाली धाय का सास के समान मान-सम्मान

करती थी, यह स्वाभाविक था।

पण्डित मोतीलाल की प्रारम्भिक शिक्षा भी कश्मीरी घराने के रिवाज के अनुसार फारसी और अरवी में हुई। खेतड़ी में तब काजी सदरुद्दीन इन दोनों ही भाषाओं के अच्छे विद्वान थे। राजा फतहसिंह को भी इन्हीं काजी जी ने यह दोनों भाषायें पढ़ाई थीं। ऐसे उस्ताद से पढ़ने का नतीजा यह हुआ कि वारह वर्ष की आयु में ही फारसी पर मोतीलाल का अच्छा अधिकार हो गया था।

अंग्रेजी की पढ़ाई तो मोतीलाल के खेतड़ी से कानपुर जाने के वाद आरंभ हुई जहां उनके सबसे बड़े भाई वंशीधर तब रह रहे थे।

१८८७ ई० में नन्दलाल नेहरू की मृत्यु और उसके वाद अपनी दिन-दूनी रात-चौगनी वढ़ने वाली वकालत और फिर सार्वजनिक जीवन की व्यस्तता में भी पण्डित मोतीलाल नेहरू का खेतड़ी और खेतड़ी के राजा अजीतसिंह के साथ जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा, उसके पीछे बड़े भाई की सेवा और सम्बन्ध तो था ही, अपने स्वयं के बचपन की मधुर स्मृतियां भी कम नहीं थीं।

८. राजा अजीतसिंह और पण्डित मोतीलाल

पण्डित नन्दलाल जिस नौ वर्ष के बालक अजीतसिंह को राजा फत
सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में खेतड़ी की गद्दी पर बिठाकर राजस्थ
से विदा हुये थे, वह नन्दलाल के पुत्र-समान छोटे भाई मोतीलाल
समवयस्क था। राजा अजीतसिंह की जन्मतिथि १६, अक्टूबर, १८६१
है और पण्डित मोतीलाल नेहरू का जन्म ६ मई, १८६१ ई० को हु
था। इस प्रकार मोतीलाल राजा अजीतसिंह से कुल पांच महीने और
दिन बड़े थे।

बचपन की यादें जीवन की मधुरतम स्मृतियां होती हैं और मोतील
जैसे मेधावी के मानस-पटल से खेतड़ी की वे स्मृतियां कैसे विस्मृत
सकती थीं? वह खेतड़ी जहां उसके शैशव ने अपनी राजस्थानी धाय
स्तन-पान कर पोषण पाया था, जहां बालू रेत के एक धोरे (टीले)
उसका बचपन खेला था और जहां काजी सदरुद्दीन जैसे अध्यापक ने
छुटपन में ही अरबी, फारसी की विशेष योग्यता हासिल करा दी थी।

होश संभालने के बाद पण्डित मोतीलाल को अपनी जीवन नौ
खेने के लिये कड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। ४२ वर्ष की आयु में पितृक
भाई नन्दलाल की अकाल मृत्यु ने २५ वर्ष के युवक मोतीलाल के कं
पर अपनी विधवा भावज नन्दरानी, उनकी दो पुत्रियों और पांच पुत्रों
भरे पूरे परिवार के भरण-पोषण का बड़ा भार भी डाल दिया था। इध
राजा अजीतसिंह गद्दी पर बैठकर भी समस्याओं से घिरा था। कोटपूत
के परगने के कारण खेतड़ी की हैसियत ब्रिटिश सरकार के जागीरदार

थी और गद्दी का उत्तराधिकारी गोद लेने की दशा में सरकार ने नजराना लेने का नियम बना दिया था। अतः बालक अजीतसिंह को बीस हजार रुपये का "मातमी नजराना" तो ब्रिटिश सरकार को ही देना पड़ा और जयपुर के झाड़साही सिक्के में एक लाख चौवन हजार नौ सौ छियानवे रुपये दिये जाने उस वार्षिक कर के निर्धारित हुए जो पिछले उन्नीस सालों से बकाया था। राजा फतहसिंह के समय में यह कर दिया ही नहीं गया था।

राजा अजीतसिंह और पण्डित मोतीलाल दोनों ही के सामने भावी जीवन एक चुनौती बनकर खड़ा था। दोनों ही परम मेधावी, साहसी और उद्यमी थे और इस चुनौती को उन्होंने बड़े धैर्य और आत्मविश्वासपूर्वक स्वीकार किया। कानपुर के हाई स्कूल और और इलाहबाद के मुइर कालेज में पढ़कर मोतीलाल ने अपने बड़े भाई नन्दलाल के पेशे—वकालत—को अपनाया और अनवरत अध्यवसाय, सतत श्रम तथा आगे बढ़ने के हौसले से शीघ्र ही वकीलों की प्रथम पंक्ति में स्थान बना लिया। इधर राजा अजीतसिंह की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व जयपुर के महाराजा रामसिंह ने उठाया और स्वर्गीय राजा फतहसिंह के साथ अपने अच्छे सम्बन्ध न रहने पर भी उन्होंने खेतड़ी के नाबालिग उत्तराधिकारी को सब प्रकार से योग्य बनाने में कोई कसर न छोड़ी। राजा अजीतसिंह के लिये अच्छे सुशिक्षित अध्यापक[1] की व्यवस्था की गई और इसका सुफल यह हुआ कि राजा अजीतसिंह ने १८८० ई० में जब पूर्ण शासनाधिकार ग्रहण किया तो वे एक सुशिक्षित, उदार, गुण-ग्राहक और प्रजा-पालक शासक की सभी विशेषताओं से सम्पन्न थे।

पण्डित मोतीलाल ने अपने दिवंगत भाई नन्दलाल की सन्तान के संरक्षण का भार बड़ी तत्परता से उठाया और उन्होंने अपने भतीजों तथा भतीजियों को उतनी ही ऊंची शिक्षा देना और जीवन में व्यवस्थित कर

---

[1]यह अध्यापक पं० गोपीनाथ खण्डेलवाल जयपुर निवासी थे और महाराजा कालेज, जयपुर के आद्य स्नातकों में से थे।

देना चाहा, जैसा नन्दलाल ने उसके लिये किया था। वह एकनिष्ठ भाव से अपने भाग्य का निर्माण करने में संलग्न हुए और परिश्रम तथा सूझ-बूझ के कारण उनकी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति होती गई। नन्दलाल का खेतड़ी से घनिष्ठ संबंध था और स्वयं मोतीलाल के बचपन की यादें भी इसी संबंध से जुड़ी थीं। यद्यपि कहां खेतड़ी और कहां इलाहाबाद, पर कुलीन मोतीलाल ने इस सम्बन्ध को राजा अजीतसिंहके साथ बराबर बनाये रखा।

राजा अजीतसिंह और पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रगाढ़ मैत्री और घनिष्ठता का परिचय हमें १८८९ ई० के उन पत्रों से मिलता है जो जवाहर लाल के जन्म के पश्चात एक-दूसरे को भेजे गये थे। जवाहरलाल का जन्म १४ नवम्बर, १८८९ ई० को हुआ था। मोतीलाल नेहरू को पहले भी अपने बचपन में हुई पहली शादी से भी पुत्र लाभ हो चुका था, किन्तु तब जच्चा और बच्चा, दोनों ही की मृत्यु हो गई थी। पहले विवाह के इस दुखद अन्त के बाद मोतीलाल ने स्वरूप रानी से विवाह किया। आरम्भ में स्वरूपरानी का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता था और जो पहला पुत्र हुआ वह भी जीवित न रहा। दूसरे पुत्र, जवाहरलाल का जन्म सचमुच नेहरू परिवार में अत्यंत आनन्द का अवसर था। पुत्र-जन्म की यह शुभ सूचना पण्डित मोतीलाल ने पत्र द्वारा राजा अजीतसिंह को दी थी जिसके उत्तर में उन्होंने ९ दिसम्बर, १८८९ को पण्डित मोतीलाल नेहरू, वकील हाईकोर्ट, इलाहबाद को इस प्रकार बधाई दी थी।[1]

…प्रिय पण्डितजी, आपके दो पत्रों की पहुंच सहर्ष स्वीकारते हुये मुझे यह जानकार बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आपको पुत्र लाभ हुआ है। इसके लिये आपको मेरी बधाई :

"जहां तक (बालक के) जन्म-पत्र का सम्बन्ध है, यह आपको कुछ समय बाद भेज दिया जायेगा। —आपका हितैषी —अजीतसिंह।"[2]

---

[1]मूलपत्र—परिशिष्ट सं० १ देखिए।

[2]हमने इस जन्म-पत्र को नेहरू म्यूजियम, दिल्ली में भी तलाश किया परन्तु खेद है कि यह प्राप्त नहीं हुआ—लेखक

इस पत्र से स्पष्ट है कि पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने लाड़ले जवाहर का जन्मपत्र बनाने के लिये प्रयागराज कहे जाने वाले इलाहाबाद में भी किसी पण्डित को उपयुक्त नहीं समझा और अपने मित्र, खेतड़ी नरेश से ही इसके लिये अनुरोध किया। कश्मीरी ब्राह्मणों में नवजात बालक अथवा बालिका का जन्म-पत्र बनवाने की परम्परा रही है। अतः खेतड़ी के राज-पण्डित ज्योतिषी रूडमल्ल शर्मा ने जवाहरलाल का जन्म-पत्र बनाया जिसे राजा अजीतसिंह ने पण्डित मोतीलाल को भेजा था। पण्डित मोतीलाल जानते थे कि राजा साहब को ज्योतिषी से विशेष अनुराग है और उन्होंने ज्योतिष-शास्त्र के अनेक यंत्रों का संग्रह भी किया था। यहां यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि पण्डित रूडमल्ल बड़े कुशल ज्योतिर्विद थे। उन्होंने राजा अजीतसिंह के आदेश से एक पंचांग का प्रकाशन भी आरंभ किया था जो प्रायः तीन वर्ष तक "अजितप्रकाश पंचांग" के नाम से खेतड़ी से प्रकाशित हुआ था।

खेतड़ी के साथ पण्डित मोतीलाल नेहरू के अभिन्न और घरेलू सम्बन्धों का परिचय देने वाला एक और पत्र लेखक के संग्रह में विद्यमान है जो पण्डित जी ने १८ मार्च, १९०० ई० को इलाहाबाद से मुंशी जगमोहनलाल को लिखा था। यह मुंशी जगमोहनलाल जयपुर के माथुर-कायस्थ थे और राजा अजीतसिंह के निधन के बाद तक खेतड़ी की मुख्तियारी (कौंसिल) के विभिन्न पदों पर काम करते रहे थे। बाद में यह कलकत्ता और अलवर रहे जहां के महाराजा ने उनका बड़ा मान-सम्मान किया था। यह कवि और अच्छे लेखक भी थे। इनका देहान्त १९२१ ई० में हुआ था।

पण्डितजी उपरोक्त पत्र में जो काफी लम्बा है, मुंशीजी को लिखते हैं :

"१४. आपने जो क्षेम कुशल के समाचार पूछे, उसके लिये धन्यवाद। मेरी पत्नी और परिवार के अन्य लोग सभी आनन्दपूर्वक हैं। आपने शायद मुझे एक बार बताया था जिसमें हिज हाईनेस (राजा अजीतसिंह) ने जवाहरलाल के लिये एक घोड़े की बाबत कुछ बातें जाननी चाही थीं।

अब मुझे पता चला है कि आपने मुंशी मुबारकअली (नेहरू परिवार के खास प्रबन्धक और पण्डित मोतीलाल के विश्वस्त और सबसे बड़े मुंशी) से कुछ ऐसी बात कही थी जिससे उन्हें लगा कि कोई ठीक-ठाक घोड़ा मिल गया है और उसे सधाया जा रहा है। कृपया बतायें कि क्या यह सही है? जवाहरलाल (जो अब ग्यारह साल के हैं) ने जो घुड़सवारी सीखी थी, करीब-करीब भूल चुका है और मैं चाहता हूं कि उसके लिये फौरन एक घोड़ा आ जाये।

"१५. आपको नुमाइश के बारे में मेरा टाइप किया हुआ पत्र मिला होगा।[1] इसके आसार तो बहुत अच्छे हैं। मैं जितने लोग जुटा पाया हूं वे उनसे भी ज्यादा चाहते हैं और मैंने महाराज बहादुर को कलकत्ता भेजा है ताकि कुछ नटों वगैरा को तय कर आयें। जहां तक तमाशों का सवाल है, फ्रांसीसी भारत को भी हमारे दायरे में शामिल किया गया है। मुझे बताया गया है कि हिज हाइनेस के पास एक बहुत होशियार बीनकार[2] भी तैनात है। यदि हिज हाईनेस उसे कुछ महीनों के लिये पेरिस जाने दें तो मुझे बड़ी खुशी होगी। कृपया हिज हाईनेस की इजाजत ले लीजिये और माहवारी तनख्वाह के अलावा उसे दूसरे सब खर्चे भी दे दिये जायेंगे।

"जहां तक झूंथा पहलवान[3] का सम्बन्ध है, मुझे नहीं मालूम कि वह क्या है, लेकिन अगर आप समझते हैं कि वह ठीक है तो आप उसे भी यहां भेज सकते हैं। अगर उसे नहीं चुना गया तो उसके इलाहाबाद आने-जाने का खर्च दे दिया जायेगा।

"जो बकरा दूध देता है, वह निश्चय ही कौतूहल का विषय है, पर

---

[1]तब टाइप-राइटर का चलन हुआ ही था और मोतीलाल नेहरू इसका उपयोग करने लगे थे।

[2]प्रसिद्ध बीनकार मुशरफखां जो जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह की मृत्यु के बाद राजा अजीतसिंह के पास रहने लगा था।

[3]झूंथाराम खेतड़ी का प्रसिद्ध पहलवान था। आज भी उसकी बगीची 'झूंथा पहलवान की बगीची' के नाम से प्रसिद्ध है।

सवाल यह है कि वह कितने दिन तक इस तरह दूध देता रह सकता है ? हो सकता है, यह पेरिस पहुंचे उससे पहले ही दूध देना वन्द कर दे। अगर आप सच मानते हैं कि ऐसा नहीं होगा तो आप इसे भी भेज सकते हैं।

"यह सारी पार्टी १२ अप्रैल को वम्वई से रवाना होने वाले स्टीमर में जायेगी और मुझे सबके लिए जितनी जल्दी हो सके, यात्रा की व्यवस्था करनी होगी। आपको जो कुछ भी भेजना है, कृपया तुरन्त भेज दें। मैं खासतौर से वीनकार को चाहता हूं। कृपया उसे वता दीजिए कि वह अपने ही लोगों में रहेगा क्योंकि मैंने पाँच-छ: गाने-वजाने वाले और तय किये हैं जो उसे अच्छी तरह जानते हैं और उन्हीं के सुझाव पर मैंने आपको उसके लिये लिखा है। मैं अभी तक कोई अच्छा वाजीगर नहीं पकड़ पाया हूं। यदि उधर कोई ऐसा वाजीगर हो जिसे पेरिस भेजा जा सके तो कृपया उसे तय कर लीजिये।

"कृपया हिज हाईनेस और शाहपुरा के राजकुमार साहव[1] को मेरा अभिवादन पहुँचायें। —आपका शुभैषी, मोतीलाल नेहरू।"[2]

इस प्रकार पुत्र का जन्म पत्र चाहिये तो खेतड़ी से, उसके लिये घोड़ा चाहिये तो वह भी खेतड़ी से और पेरिस की नुमाइश के लिये, जिसका इन्तजाम हिन्दुस्तान में शायद पण्डित मोतीलाल ही कर रहे थे, वीनकार, वाजीगर, दूध देने वाला वकरा और पहलवान चाहिये तो वह भी खेतड़ी से ही मंगाने की तजवीज करने वाले पण्डित मोतीलाल नेहरू राजा अजीतसिंह और उनके मंत्रियों से खुला और घरेलू व्यवहार रखते थे। यह तो कुछ हलकी-फुलकी वातें हैं, किन्तु ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर भी जिनसे उन्हें मानसिक तनाव हुआ, पण्डित मोतीलाल नेहरू ने राजा अजीतसिंह को अपने पत्रों में दिल खोलकर रख दिया। ऐसा एक प्रसंग १८९९ ई० में उनकी प्रथम इंग्लैंड यात्रा की वापसी के वाद उपस्थित हुआ जव कट्टर

---

[1]राजकुमार श्री उम्मेदसिंह और राजा अजीतसिंह के जामाता।

[2]देखिए परिशिष्ट सं० २

जाति-बांधवों ने उन्हें विरादरी से वहिष्कृत कर दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि पण्डित मोतीलाल नेहरू से दो वर्ष पूर्व राजा अजीतसिंह के इंग्लैंड-यात्रा से वापस आने पर भी जयपुर में कुछ ऐसा ही प्रसंग चला था। मोतीलाल नेहरू ने अपने कट्टरपंथी जाति भाइयों के प्रति जैसा रुख अपनाया, प्रायः वैसा ही राजा अजीतसिंह ने भी अपनाया था और मोतीलाल नेहरू के वापस आने के बाद दोनों में इस विषय पर जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह इस साम्य को ही नहीं, दोनों के समान दृष्टिकोण को भी व्यक्त करता है।

२२ दिसम्बर, १८९९ ई० को पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कानपुर में रहने वाले अपने मित्र पण्डित पिरथीनाथ चक को इस विषय पर जो लम्बा पत्र लिखा था उसकी एक प्रति राजा अजीतसिंह को भी भेजी थी। इसके कुछ मुख्य अंश इस प्रकार हैं —

"प्रिय पिरथीनाथ, मेरे सुनने में आई अनेक ऊल-जलूल अफवाहों के कारण मैं विरादरी के सवाल पर आपको यह लिख रहा हूं।

"इंग्लैंड से मेरे लौटने के बाद मैं जो रीति-नीति अपनाना चाहता था और जो मैंने सचमुच अपनाई भी है, वह है किसी भी प्रकार धृष्ठता न दिखाना। मैं चुपचाप लौट आया और किसी भी प्रकार की राय आमंत्रित किये अथवा अपने आपको दूसरों पर थोपे बिना अपने परिजनों में घुल-मिल गया। यदि मुझे यूंही मेरे हाल पर छोड़ दिया जाता तो स्वाभाविक क्रम में ही मेरी यूरोप-यात्रा और सामाजिक अयोग्यतायें (उससे यदि कोई सामाजिक अयोग्यताएं पैदा होती थीं:) शीघ्र ही भूली-विसरी बातें हो जातीं। किन्तु, मेरे प्रिय, पुराने मित्र और प्रशंसक श्री हृदयनाथ (कुंजरू) को मुझे खिन्न करना और मामले को बढ़ाना ही ठीक लगा। उन्हें ऐसा करने की पूरी आजादी है क्योंकि वह उन लोगों में से हैं जो ऐसी जगह भागने में भी नहीं हिचकते जहाँ देवता भी पाँव धरते डरते हैं:...

"...जहाँ तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा दिमाग साफ है और अन्तिम राय बना चुका है। चाहे जो कुछ हो, मैं प्रायश्चित्त की बेवकूफी

में नहीं पड़ूंगा। हां, कभी नहीं, चाहे मौत ही क्यों न आये। मुझे उकसाया गया है और अपनी पर्दागीरी से सार्वजनिक जानकारी में जबर्दस्ती खींच लाया गया है। लेकिन मेरे दुश्मनों के लिये मुझे तोड़ना आसान नहीं होगा। मैं जानता हूं कि आपकी बिरादरी क्या है और यदि जरूरत हुई तो अपनी आत्म-रक्षा में मैं इसे निर्दयतापूर्वक उधेड़कर रख दूंगा और चिथड़े-चिथड़े फाड़कर फेंक दूंगा।...यदि कोई समझता है कि मैं थोथी धमकियों के आगे झुक जाऊंगा तो वह बड़ी गलती पर है। जब तक हृदयनाथ और उसके पिछलग्गू भौंकते हैं, मैं उपेक्षा और घृणा भरे मौन द्वारा ही दरगुजर कर जाऊंगा।"[1]

१८९७ ई० में जब राजा अजीतसिंह इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों की यात्रा पर थे तो जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह (द्वितीय) ने "दूसरे लोगों की आपत्तियों की आड़" में प्रच्छन्न रूप से इसका विरोध किया था और लौटने पर जब राजा अजीतसिंह ने जयपुर में कई एक सरदारों को अपने यहाँ भोजन पर निमंत्रित किया तो विरोधी वातावरण के कारण कोई नहीं आये और राजा जी को मानसिक संताप सहन करना पड़ा था। फिर भी राजा अजीतसिंह की रीति-नीति पण्डित मोतीलाल नेहरू के समान ही किसी भी प्रकार की ढिठाई दिखाने की न थी। वे मौन और गम्भीर ही रहे, क्योंकि विलायत जाने के पूर्व वे जयपुर राज्य के गण्यमान्य सरदारों और अपने शेखावत बन्धु-बान्धवों के विचारों का पता लगाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त कर चुके थे। जयपुर में जो कुछ हुआ, उसके बाद आबू में जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह ने अपनी रानी की साल गिरह के उपलक्ष में एक प्रीति-भोज का आयोजन किया था जिसमें उस समय आबू में उपस्थित सभी राजपूत नरेशों और सरदारों के साथ राजा अजीतसिंह ने भी भाग लिया था। उस समय न किसी ने कोई आपत्ति की और न कोई गड़बड़ी हुई। यह राजा अजीतसिंह की दृढ़ता और साहस का ही परिणाम था।

---

[1]मूलपत्र परिशिष्ट सं० ३ में देखिए।

९. खेतड़ी की वकालत

इलाहाबाद में वकालत जम जाने के बाद जब पण्डित मोतीलाल नेहरू शहर के अपने मुहाल से निकल कर सिविल लाइन्स की तरोताजा हवा में आगये और उनका आचार-व्यवहार पश्चिमी सांचे में ढलने लगा तो उन्हें विलायत जाने की भी इच्छा हुई। दो वर्ष पूर्व नेहरू परिवार के सबसे बड़े भाई वंशीधर जो जीवन भर रूढ़िवादी कश्मीरी पण्डित रहे थे सारी दुनिया का भ्रमण कर आये थे और इसके साथ ही रूढ़िगत संस्कारों की वह जंजीरें भी टूट गई थीं जिन्होंने उन्हें समुद्री जहाज में बैठने के पूर्व तक जकड़ रखा था। कई महीनों बाद जब पण्डित वंशीधर भारत लौटे तो वे एक कश्मीरी पण्डित के बजाय एक अंग्रेज या अमरीकन जेंटिलमैन दिखाई देते थे।[1]

दो वर्ष बाद पण्डित मोतीलाल भी इंग्लैंड और यूरोप गये। यह यात्रा अंशतः आमोद-प्रमोद के लिये और मुख्यतः जयपुर के विरुद्ध खेतड़ी की स्थिति को स्पष्ट करने और राजा अजीतसिंह की हैसियत को बढ़ाने के साथ-साथ उनके लिये उच्च ब्रिटिश क्षेत्रों में समर्थन पाने के उद्देश्य से हुई थी। इस यात्रा के बाद ही खेतड़ी की वकालत करते हुये उन्होंने भारत के वायसराय और गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन के लिये एक वृहत् स्मरणपत्र (मेमोरियल) तैयार किया था, जिसकी मुद्रित प्रतियां इंग्लैंड में भी खास-खास लोगों को भेजी गई थीं। राजा अजीतसिंह ने पण्डित मोतीलाल की इस पहली यूरोप यात्रा के लिये उन्हें कई परिचय पत्र भी लिखकर दिये थे।

---

[1]दी नेहरूज, बी० आर० नन्दा, पृ० ३८

७८ मुद्रित पृष्ठों में पण्डित मोतीलाल नेहरू का तैयार किया हुआ स्मरण पत्र या 'मैमोरियल' भूतपूर्व खेतड़ी संस्थान की कानूनी स्थिति और खेतड़ी के राजा के अधिकारों पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यद्यपि यह शुद्ध कानूनी मुद्दों को लेकर चला है, तथापि इसमें भी राजा अजीतसिंह और पण्डित मोतीलाल नेहरू के पारस्परिक विश्वास, प्रेम और मैत्री का संकेत अवश्य मिलता है।

राजा अजीतसिंह ने स्वामी विवेकानन्द की अमरीका-यात्रा में वहुत वड़ा योग दिया था, यह तो अव एक जानी-मानी वात है, किन्तु पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रथम विदेश-यात्रा के भी वे प्रमुख प्रेरक थे, यह किंचित् नई वात लग सकती है। जो हो, इस वात की पुष्टि पण्डित मोतीलाल नेहरू के उन पत्रों से ही हो जाती है जो उन्होंने वम्वई में भारत का तट छोड़ने के वाद एम० ए० अरेविया नामक जहाज से ही लिखने आरंभ कर दिये थे। १७ अगस्त, १८९९ ई० का एक पत्र अंशत: यहां दिया जा रहा है जो चलते जहाज से जव सामने अदन का वन्दरगाह नजर आने लगा था, पण्डित मोतीलाल ने राजा अजीतसिंह को लिखा था :

"अरव सागर के आतंक को पारकर अव मैं लाल सागर की भीपणता को पार करने के लिये तैयार हूं। मानसून कमजोर है फिर भी कुल मिला कर यह मेरे लिये वहुत है। दो दिन तो तवीयत वहुत खराव रही, वैसे वम्बई से निकलने के वाद ही यह अच्छी नहीं थी। इसलिये मुझे खेद है कि मैं आपका कोई काम नहीं कर पाया हूं। मैं मानता हूं कि हमने जो छ: महीने का समय मांगा है, वह थोड़ा ज्यादा है। यदि समुद्र शान्त रहा तो मैं आशा करता हूं कि मारसेलीज पहुंचने के पहले ही कुछ न कुछ तैयार करके आपके पास भेज पाऊंगा। जो भी हो, यदि आप तीन महीने अथवा रेजीडेंट के छुट्टी से लौटने तक का समय भी—जो एक सितम्वर से दो महीने रहता है—ले लेंगे तो इससे हमें अपना जवाव तैयार कर लेने का समय मिल जायेगा।—आपका आज्ञाकारी, मोतीलाल नेहरू"।[1]

[1]देखिए परिशिष्ट में पत्र सं० ४

खेतड़ी के काम की पण्डित मोतीलाल को तब कितनी चिन्ता रहती थी, इसका प्रमाण इंग्लैण्ड रवाना होने के पूर्व बम्बई से लिखा गया यह पत्र है जिसमें उन्होंने अपने वकील मित्र विशन नारायण दर[1] को लिखा है :

इस पत्र के साथ मैं अपने मित्र और खेतड़ी की कौंसिल के सदस्य मुंशी जगमोहनलाल का आपसे परिचय कराना चाहता हूं। मेरे परिवार और खेतड़ी के बीच एक लम्बे अर्से से जो सम्बन्ध चले आते हैं, आपने उनके बारे में सुना होगा। मैं समय-समय पर खेतड़ी का कोई न कोई काम करता रहा हूं और अब जबकि मैं इंग्लैण्ड के लिये प्रस्थान कर रहा हूं, मुझे अपनी अनुपस्थिति में अपने किसी एवजी के नाम का सुझाव देना है। मैं आपको तथा दुर्गाचरण को, आवश्यकता होने पर यह काम करने के लिये सबसे उपयुक्त समझता हूं। कृपया मुंशी जगमोहनलालजी जो काम आपसे कराना चाहें, उस पर पूरा ध्यान दीजिएगा।"[2]

इंग्लैण्ड से स्वदेश रवाना होने के पूर्व पण्डित मोतीलाल नेहरू ने तीन फुलस्केप पृष्ठों में टाइप किया हुआ एक लम्बा पत्र मुंशी जगमोहनलाल को फिर भेजा जिसमें वे खेतड़ी और राजा अजीतसिंह के सच्चे मित्र और हित-चिन्तक के रूप में सामने आते हैं। यह पूरा पत्र इस प्रकार है :

दि फर्स्ट एवेन्यू होटल,
हाई हालबोर्न,
लन्दन डब्ल्यू० सी.

२२-१०-१८९९.

प्रिय जगमोहनलालजी,

पिछली दो-तीन डाकों में आपका कोई पत्र नहीं आया और मैं भी ऐसा व्यस्त रहा कि आपको पत्र न लिख सका। अब मेरे स्वदेश लौटने

---

[1]पं० विशन नारायण दर सन १९११ ई० में अ० भा० कांग्रेस के २६ वें कलकत्ता महाधिवेशन के सभापति बने थे।

[2]देखिए मूलपत्र अंग्रेजी में, परिशिष्ट संख्या: ५

का ससय समीप आ रहा है। मैंने अपने जीवन में पहली वार यह अनुभव किया है कि इंग्लैण्ड जैसे देश से स्वदेश लौटना कितना सुखद विचार है। यों तो यह छोटा-सा टापू अनेक प्रकार के आनन्दों से परिपूर्ण है यद्यपि उन आनन्दों को छोड़कर जाना खेदजनक नहीं है वरन् खेदजनक वात यह है कि अकेले लन्दन में ही जो कुछ देखने का है—मैं उसका १० वां भाग भी नहीं देख सका— फिर इस छोटे से टापू के अन्य महानगरों के वारे में तो कहना ही क्या है —। परन्तु इन आनन्दों और सुखों से उस आनन्द और सुख की कल्पना अधिक सुखदायक है जो पुनः अपने आत्मीयों में जाकर प्राप्त होगा। स्वदेश का आकर्षण, अन्य व्यक्तियों और चीजों को देखने के शौक से कहीं अधिक वलशाली है और मुझे ऐसे आकर्पण के आगे घुटने टेकने ही होंगे। इस द्विविधा में मैं इस मास के अन्त में इंग्लैण्ड का तट छोड़ दूंगा। मैं जिस जहाज से लौटूंगा वह यहां से १२ नवम्वर को प्रस्थान करेगा और व्रिण्डजी के रास्ते जायेगा। मैं वीच का समय युरोप में विताना चाहता हूं।

मास के अन्त तक मैं इंगलैंड का तट छोड़ दूंगा। मैं जिस जहाज से लौटूंगा वह यहां से १२ नवम्वर को प्रस्थान करेगा और व्रिण्डजी के रास्ते जायगा। मैं वीच का समय युरोप में विताना चाहता हूं।

सौभाग्य से शाहपुरा के राजकुमार साहिव से, जव वह स्वदेश लौटने वाले थे, भेंट हो गई। वह मुझे नहीं जानते थे परन्तु मेरे लिये यह आसान था कि उन्हें अपना परिचय दूं। वह वहुत मिलनसार राजकुमार हैं और मुझे उनसे मिलकर वड़ा हर्ष हुआ।

मैं जिन-जिन व्यक्तियों के नाम महाराज साहिव से परिचय पत्र लेकर आया था उन सवसे अभी तक भेंट नहीं हो सकी क्योंकि उनमें से अधिकांश अभी तक नगर में नहीं आए, हां मैं उनमें से अधिकांश से मिल चुका हूं। सरजी सीमोर फिटगेराल्ड ने सामन्त सभा (House of Lords) और अन्य दर्शनीय स्थानों के देखने में भारी सहायता दी। सर डव्ल्यू ली वार्नर वहुत ही नीरस व्यक्ति निकले। इण्डियन नेशनल कांग्रेस को कोसने

के सिवा वह और किसी विषय पर बात ही न कर सके। डा० लीनाक्स ब्राउन मजेदार पुराने सर्जन हैं और अभागे गले के रोगियों की उत्सुकतापूर्ण टोह में रहते हैं। जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने शाहपुरा के महाराज, राजकुमार तथा उनके भाई और प्रीमेसोजरी एण्ड कम्पनी के बारे में बातें कीं। जैसे ही उन्हें यह मालूम हुआ कि मुझे खांसी की शिकायत है तो और बातें भूलकर मेरे गले तथा नाक की परीक्षा करने लगे। खूब देखभालकर उन्होंने कहा कि पहले चिकित्सक ने गले को ठीक करने के लिये सब कुछ ठीक ही किया है परन्तु उसने नाक पर काफी ध्यान नहीं दिया और रोग की सारी जड़ नाक में है। शुद्ध हिन्दुस्तानी में इसका अर्थ हुआ—

'मारूं घुटना फूटें आंखें'

उन्होंने नथने चौड़े करने के लिए कोई आपरेशन नहीं बताया और न ही नाक के घावों को जलाने के लिए सलाह दी। उनकी राय यह थी कि चूंकि मेरे नथने बहुत तंग हैं, इसलिए सांस लेने में बाधा पड़ती है। नाक की राह जो श्लेष्मा बाहर निकलनी चाहिए वह उस रास्ते से नहीं निकलता है और गले में चला जाता है—इससे वहां खराश पैदा होती है और इस तरह खांसी आती है। मैं उनसे सहमत न हुआ। मैंने तत्काल कह दिया कि यदि ऐसी बात होती तो फिर जन्म से ही मुझे खांसी आनी चाहिए थी—परन्तु, ऐसा तो नहीं हुआ, अतएव आप इस कष्ट का कोई और कारण सोचें। उन्हें मेरी यह बात पसन्द न आई कि मैं उनकी अक्ल पर संदेह करूं परन्तु उन्होंने अपने मनोभाव को छिपाने की चेष्टा की और एक लम्बा लैक्चर झाड़ दिया। मुझे यह मानना पड़ेगा कि उनका व्याख्यान समाप्त होने से पूर्व ही उनसे चिकित्सा कराने का मेरा विचार आधा रह गया। मैं इस अनजान देश में, जहां मेरी देखभाल करने वाला कोई नहीं है आपरेशन कराने के लिये पर्याप्त साहस न बटोर सका। मुझे द्विविधा में देखकर उन्होंने एक यन्त्र की सहायता से मेरा नथना फिर देखा। मैं अभी सोच ही रहा था कि उन्होंने एक नथने में दवा लगा दी।

अब मैंने हथियार डाल दिए। उन्होंने दूसरे नथने में भी वही दवा लगा दी। घावों को जला डाला। खैर इस तरह नाक के ३ आपरेशन हुए और अब उसे छूना भी कठिन है। मैं जब नाक साफ करता हूं तो रूमाल पर खून के छिछड़े आ जाते हैं, इस पर गजब यह है कि उन्हें २० गिन्नी का चैक देना पड़ा। मुझे कहना होगा कि ब्राउन इंगलैंड भर के गला विशेषज्ञों में सबसे अधिक चतुर है। मेरे अनेक परिचित भी उसकी प्रशंसा करते हैं। अतएव आशा है कि उसने जो कुछ किया है ठीक ही किया होगा। जब तक प्रदाह शांत नहीं होता—मुझे आराम नहीं आ सकता। आशा है एक सप्ताह बाद नाक ठीक हो जाएगी। इस विषय को समाप्त करने से पहले मैं महाराज साहब की जानकारी के लिए यह कहना चाहता हूं कि ब्राउन की मुख्य आकांक्षा यह है कि वे जो नया भवन (लाज) बनवाने का विचार कर रहे हैं उसके लिए उसको आनरेरी आफिसर चुन लिया जाए। उसने भवन के लिए नाम भी सुझाया है—'दी इंडियन एम्पायर लॉज'। मेरी समझ में यह नाम बहुत उपयुक्त है।

इस डाक्टर के बारे में एक और भी मजेदार बात है। वह स्वर्गीय सर मारल मैकेजी के साथ जर्मनी के स्वर्गीय सम्राट के गले की चिकित्सा करने गया था। दोनों ही इंगलैंड में गले के रोगों के नामी चिकित्सक माने जाते हैं। लोग उनकी चर्चा आने पर कहते हैं—'मारल[1] मैकेजी'—'इम्मारल'[2] ब्राउन। कारण यह है कि इंगलैण्ड भर की सुन्दर एक्ट्रैसें (अभिनेत्रियां) वहां अपने गले का इलाज कराने आती हैं और वह किसी से एक पाई नहीं लेता और उन्हें सबसे पहले देखता है, गोया, आप दिल्ली के हकीम महमूद खां हैं। काश! मैं भी एक्ट्रैस होता; २० गिन्नी बचाने के लिये नहीं; उस कष्ट से बचने के लिए जो मुझे उसके हाथों आपरेशन कराते समय उठाना पड़ा। शायद सुन्दरी समझकर वह कुछ दया करता।

---

[1]मोरल (Moral)=चरित्रवान

[2]इम्मोरल (Immoral)=नैतिकता विहीन।

मैं यहां सर मनचेरजी भावनगरी से भी मिला। मैं उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। हमने बहुत देर तक खेतड़ी की समस्याओं पर बातचीत कीं। उन्होंने इस विषय में जो दिलचस्पी दिखायी उससे प्रेरित होकर मैंने 'नोट'[1] की एक प्रति भेंट की। यद्यपि पार्लियामेंट का अधिवेशन हो रहा था तो भी उन्होंने उसे आद्योपान्त पढ़ा और यह मत व्यक्त किया कि मैंने यह इंगलैंड के एडवोकेट जनरल सर एडवर्ड क्लार्क से लिखवाया है। उन्होंने कहा कि कोई भारतीय इतना सुन्दर नहीं लिख सकता। मैं अपनी कमजोरी मानता हूं कि मैं ऐसी खुशामद भरी बात सुनकर फूल उठा। तो भी उन्होंने बहुमूल्य सम्मत्ति दी और यह निश्चय प्रकट किया कि खेतड़ी के लिए प्रयत्न करने का यही सुअवसर है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हमें अपनी मांगें स्पष्ट रूप से पेश करनी चाहिए। हमारे दरम्यान ३ बार मुलाकातें हुईं और हर बार २-३ घण्टे तक बातचीत होती रही और उस दौरान में केवल खेतड़ी की समस्याओं पर ही विचार हुआ। मैं आपको इन मुलाकातों का विवरण नहीं लिख सकता। आखिर यह फैसला हुआ कि भारत सरकार को एक मेमोरियल भेजा जाए और यह नोट उसमें परिशिष्ट के रूप में जोड़ दिया जाए। यह मेमोरियल रेजीडेण्ट को पेश किया जाय और अनुरोध किया जाय कि वह इसे भारत सरकार को भेज दें। जयपुर रेजीडेण्ट के द्वारा जयपुर राज्य हमारे ऊपर जो नए कायदे थोपना चाहता है (जिनसे राजा साहिब खेतड़ी उनसे सहमत नहीं हैं) उनको अपना मेमोरेण्डम पेश करने के लिए मुख्य कारण बनाया जाए। मेरे विचार में सर मनचेरजी की राय बिल्कुल दुरुस्त है और मुझे विश्वास है कि राजा साहिब भी इस विचार को पसन्द करेंगे। मैं लौटते समय, जहाज पर उस मेमोरेण्डम का मसविदा तैयार करूंगा। इंगलैण्ड से प्रस्थान करने से पहले मैं एक या दो बार सर मनचेरजी से भेंट करूंगा।

---

[1]Nontes on the Chiefship of Khetri, जो पं० मोतीलाल जी ने ही तैयार किए थे।

मैंने जनरल लॉ से भेंट की। आश्चर्य की बात है कि वह भी सर मनचेरजी जैसी ही राय रखते हैं। ये दोनों सज्जन मुझसे इस बात पर सहमत हैं कि रेजीडेण्ट खेतड़ी का वैसा निस्वार्थ शुभचिन्तक नहीं है जैसा राजा साहब उसे समझते हैं। उसके द्वारा प्रस्तावित कायदे कुछ और ही अर्थ रखते हैं। जो कुछ भी हो, हम रेजीडेण्ट की कृपा प्राप्त करने के लिये अपने-आपको बेच नहीं सकते। मैंने नोट की एक प्रति जनरल लॉ को भी दी है, उसने भी उसे बहुत सराहा और लेखक की प्रशंसा की।

मैंने मुंशी अब्दुल करीम को भी लिखा था। वह आजकल साम्राज्ञी विक्टोरिया के पास बाल मोरल में है। उसके उत्तर से विदित होता है कि वह देर में लौटेगा और तब तक मैं इंगलैण्ड से रवाना हो जाऊंगा।

मुझे अत्यन्त खेद है कि मि० पालैट के नाम मुझे जो पत्र दिया गया था—वह कहीं गुम हो गया, सम्भवतः सरे (Surrey) में। वह पत्र यहां डाक से आया था, इसलिये उनका नाम और पता मेरी नोटबुक में नहीं है। मैं इस असावधानी के लिये अपने आप को कभी क्षमा नहीं कर सकता। वास्तविकता यह है कि जीवन में यह पहला अवसर है कि मैं अकेला यात्रा कर रहा हूं। और मेरे साथ कोई सहकारी नहीं है इसलिये हर जगह कुछ-न-कुछ उपयोगी चीज छूट जाती है।

मैं महाराज साहब के दिए हुए परिचय पत्रों को लेकर इन्हीं सब लोगों से मिल सका हूं। शेष व्यक्ति इस समय नगर में नहीं हैं। अपने तौर पर मैं कुछ और भी व्यक्तियों से मिला और इंगलैण्ड के कुछ बड़े-बड़े व्यक्तियों से मित्रता भी की। परन्तु मैं इस दिशा में कुछ अधिक प्रगति नहीं कर सका क्योंकि आजकल मौसम अच्छा नहीं है। फिर सबका ध्यान युद्ध की ओर लगा हुआ है और कोई अन्य बात सुनना पसन्द ही नहीं करता।

मुझे भय है महाराज साहब के कुछ इलाके पर अकाल का प्रभाव पड़ा होगा। खेतड़ी की अकाल पीड़ित जनता को उन्मुक्त सहायता देकर सरकार की सहानुभूति प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर है। आखिर

खेतड़ी कोई बहुत बड़ी जगह नहीं है—और न ही बहुत घनी आबादी है। राज्य यथा शक्ति अकाल पीड़ितों को पेशगी दे और उन लोगों को सम्मानित करें जो अकाल पीड़ितों के सहायतार्थ दान दें। आप लोग अकाल पीड़ितों की सेवा करना अपना आदर्श बनालें। आशा है मैं स्वदेश पहुंच कर शीघ्र ही आपसे मिलूंगा।

मेरी ओर से महाराज साहब को नमस्कार कहिए। नमस्कार।

आपका

मोतीलाल नेहरू"[1]

राजा अजीतसिंह के कानूनी सलाहकार और कुशल वकील के नाते पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जो कुछ भी किया हो, उपरोक्त पत्र के अन्त में उन्होंने खेतड़ी की अकाल-पीड़ित जनता के हित में शासन से जो अपेक्षायें की हैं, वे आज भी उतनी ही सही और प्रासंगिक हैं। ब्रिटिश सरकार तब राजा महाराजाओं से प्रजा-हित और जन-कल्याण के कामों की अपेक्षा करती थी और ऐसे ही कामों के बल पर पहले पण्डित नन्दलाल ने राजा फतहसिंह की वाह-वाही करवाई थी। राजा अजीतसिंह को उनके मंत्री के द्वारा यही सलाह पण्डित मोतीलाल की रही और इसमें, सन्देह नहीं कि अपने सीमित साधनों से राजा अजीतसिंह ने भी खेतड़ी में यावज्जीवन अनेक जनोपयोगी योजनाएं पूरी कर अपने-आपको एक आदर्श और लोकप्रिय राजा सिद्ध किया।

---

[1]मूलपत्र परिशिष्ट सं० ६ पर उद्धृत है।

१०. स्वामी विवेकानन्द, राजा अजीतसिंह और पं० मोतीलाल नेहरू

सन् १८९१ ई० में स्वामी विवेकानन्दजी और राजा अजीतसिंह की पहली भेंट हुई। एक ने दूसरे को पहचाना और दोनों ओर से एक-दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया। पारस्परिक प्रेम-स्रोत उमड़ा और प्रति-दिन वह गंगा की बहती हुई धार के समान उमड़ता ही गया। स्वामीजी की जीवन-शृंखला के साथ खेतड़ी के राजा अजीतसिंहजी के नाम का सम्बन्ध इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना भी उस सम्बन्ध को विच्छिन्न नहीं कर सकती।

स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन में राजा अजीतसिंह से सम्बन्ध होना बड़ा ही महत्वपूर्ण है। स्वामीजी के विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने की सब व्यवस्था सरकार से की गई, परिणामस्वरूप स्वामीजी ने अपने आध्यात्मिक बल से वेदान्त-पताका अमेरिका में फहराकर भारतवर्ष और हिन्दू जाति का गौरव बढ़ाया। स्वयं स्वामीजी ने कहा है "भारतवर्ष की उन्नति के लिये जो थोड़ा-बहुत मैंने किया है, वह राजा अजीतसिंह के न मिलने से न होता (What little I have done for the improvement of India would not have been done if Rajaji had not met-me)

खेतड़ी (शेखावाटी) जयपुर का मण्डलवर्ती राज्य रहा है। जयपुर ने राजा अजीतसिंह को सिंहासनच्युत करने का षडयंत्र रचा और अजीतसिंह खेतड़ी को जयपुर के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए संघर्ष कर रहे

थे और चिन्तित रहने लगे थे तब स्वामीजी ने आध्यात्मिक, मानसिक मनोवल वनाये रखने के लिए लिखा था "इस पृथ्वी पर खेतड़ी नरेश को नीचा दिखाने की किसमें ताकत है जवकि महामाया शक्ति उनके साथ है (Who on Earth possess the Power to put the Rajas of Khetri down ? The divive Mother is at his elboW !")

स्वामीजी के साथ राजाजी की कोरी वाचनिक सहानुभूति (जवानी जमा-खर्च) न थी। वे उनके सच्चे सहायक और हितैषी थे। स्वामीजी की सहायता वरावर उनकी आवश्यकता की पूर्ति करने के रूप में करते रहते थे। स्वामीजी की माता को एक सौ रुपये मासिककी सहायता देने की राजाजी वहादुर ने स्थिर व्यवस्था कर दी थी और यह सहायता राजाजी और स्वामीजी के लोकान्तरित होने के वाद भी खेतड़ी-राज के खजाने से स्वामी विवेकानन्दजी की माता को उनका देहावसान होने तक निरन्तर मिलती रही। अस्तु।

राजा अजीतसिंह जी वहादुर और स्वामी विवेकानन्दजी के साक्षात्-कार और पारस्परिक प्रेम आदि का यह संक्षिप्त विवरण है।

इससे पाठकों को ज्ञात होगा कि राजपूताने के एक छोटे से राज्य के अधिपति ने भारत के नये भावों का कितना स्वागत किया था, कितनी सहानुभूति दिखायी थी, कितनी सहायता पहुंचायी थी। स्वामीजी ने राजाजी वहादुर के पास एक स्वरचित उत्साहवर्धक ओजपूर्ण पद्यमाला भी भेजी थी। उसे हम मूलरूप में यहां उद्धृत कर रहे हैं।

Hold on Yet A While, Brave Heart

(written to the Rajaji Bahadur of Khetri.)

If the sun by the cloud is hidden a bit
If the welkin shows but gloom
Still hold on yet a while, brave heart !
Tne Victory is sure to come.

No winter was but summer came behind,
Each hollow crests the wave,
They Push each other in light and shade,
　　Be steady than and brave.

The duties of life are sore indeed,
And its pleasures fleeting vain,
The goal so shadowy seems and dim,
Yet plod on through the dark, brave heart
　　with all thy might and main.

Not a work will be lost, and no struggle vain,
Though hopes belighted, powers gone,
Of thy loins shall come the heirs to all,
Then hold on yet a while, brave soul,
　　No good is e'er undone.

Though the good and wise in life are few,
Yet theirs are the reins to lead;
The masses know but late the worth,
　　Heed none and gently guide.

With thee are those who see afar,
With thee is the Lord of might,
See blessings hover on thee great soul,
　　To thec may all come right.

अंग्रेजी से अनभिज्ञ पाठक इस कविता के हिन्दी रूप आगे लिखित तुकवन्दी को पढ़कर मूल का भावार्थ समझ लें —

वीर हृदय ! दृढ़ रहो कभी मत विचलित होना।

मेघों से यदि सूर्य कभी क्षण भर छिप जावे,
गगन-प्रान्त में पूर्ण अंधेरा यदि छा जावे।
वीर-हृदय ! दृढ़ बने रहो, मत विचलित होना,
निश्चय होगी विजय तुम्हारी धैर्य न खोना॥
(यदि) शिशिर न आवे तो वसन्त का कहां पता है ?
प्रति तरंग के पूर्व पुनः गह्वर रहता है।
करते हैं साहाय्य-दान वे सदा निरन्तर,
एक एक को अस्तु, रहो दृढ़ नित्य वीरवर॥
जीवन के कर्त्तव्य कभी भी सुखद न होते,
पर विलास भी यहां सभी क्षणभंगुर होते।
छाया-सम अस्पष्ट लक्ष्य भी दीख रहा हो,
अन्धकार में वीर ! बढ़ो सब शक्ति लगा दो॥
नष्ट न होगा यज्ञ समर यह व्यर्थ न होगा,
आशाएं मिट जायं भले ही बल न रहेगा।
रहो बद्धकटि वीर ! सफल निश्चय ही होगे,
विफल न होगे कर्मवीर ! यदि अटल रहोगे॥
धीरज औ धीमान धरा में यद्यपि कम हैं,
पर वे ही वर-वीर विश्व के नायक सम हैं।
बहुत काल उपरान्त जानती जनता उनको,
ध्यान न लाना इसे मार्ग बतलाना इनको॥
साथ तुम्हारे सौम्य दूर-दर्शी सब ही हैं,
तथा तुम्हारे संग शक्ति के स्वामी भी हैं।
तुम्हें सहस्रों बार यही हूं आशिष देता,
रहो बुद्धि-सम्पन्न वीरवर ! पुण्य-प्रणेता।[1]

---

[1] खेतड़ी नरेश और स्वामी विवेकानन्द—ले० पं० झावरमल्ल शर्मा

एक तरफ राजा अजीतसिंह को आध्यात्मिक, मानसिक रूप से उत्साहित करने में स्वामी विवेकानन्द लगे थे, दूसरी ओर उनके चिर स्नेही परम मित्र, कानून के महापंडित (विधिनेता) पं० मोतीलाल नेहरू ने कानूनी पक्ष का बीड़ा अपने सर उठाया। पंडित मोतीलाल जी ने कानूनी लड़ाई का भार अपने जिम्मे लिया और "नोट्स आन खेतड़ी चीफशिप" तैयार किया एवं इंगलैण्ड में बड़े-से-बड़े कानूनी विशेषज्ञों से परामर्श किया ही नहीं अपने व्यक्तिगत प्रभाव से खेतड़ी का भी हृदय से उपयोग किया। नोट्स आन खेतड़ी पंडितजी ने बड़ी मेहनत और लगन से तैयार किये थे।

पंडित मोतीलाल जी ने १८९९ में प्रथम इंगलैण्ड यात्रा से लौटने पर बिरादरी में गलत-सही अफवाहों का डट कर दृढ़ता से मुकाबला किया। राजा अजीतसिंह को भी अपनी योरोप यात्रा से लौटने पर ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। स्वामी विवेकानन्द भी इस अपवाद से नहीं बच पाये थे। पंडित मोतीलाल के खेतड़ी में शिक्षा, सेवा और अकाल के समय गरीबों की मदद के सुझाव समय-समय पर खेतड़ी की जनता के प्रति स्नेह और कर्त्तव्य पालन के द्योतक हैं। जहां राजा अजीतसिंह ने स्वामी विवेकानन्द की अमेरिका यात्रा में बहुत बड़ा योग दिया था वहीं पंडित मोतीलाल नेहरू की प्रथम विदेश यात्रा के भी प्रमुख प्रेरक थे। यह यात्रा १७ अगस्त १८९९ में प्रारम्भ हुई और अंशत: आमोद-प्रमोद के लिये और अंशत: जयपुर के विरुद्ध खेतड़ी की स्थिति को स्पष्ट करने और राजा अजीतसिंह की हैसियत को बढ़ाने के साथ-साथ उनके लिये उच्च ब्रिटिश क्षेत्रों में समर्थन पाने के उद्देश्य से हुई थी। इस यात्रा के बाद ही खेतड़ी की वकालत करते हुये उन्होंने भारत के वायसराय और गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन के लिये एक वृहत् स्मरणपत्र (मैमोरियल) ७८ पृष्ठों का तैयार किया था।

जहां स्वामी विवेकानन्द ने अपनी सफलता का श्रेय खेतड़ी के राजा को दिया वहीं नेहरू परिवार की प्रगति के द्वार भी खेतड़ी से खुले थे।

११. रियासती जन-आन्दोलन का नेतृत्व और पं० जवाहरलाल

अपने अग्रज पण्डित नन्दलाल के असामयिक और आकस्मिक निधन के बाद पण्डित मोतीलाल नेहरू ने खेतड़ी और वहां के राजा अजीतसिंह से जो मधुर और आत्मीय सम्बन्ध बनाये रखे थे उन्हें पण्डित जवाहरलाल नेहरू से देशव्यापी नेतृत्व में एक सर्वथा नई दिशा, नया विस्तार और नये ही आयाम मिले। तत्कालीन ब्रिटिश भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्वावधान में चलने वाले स्वाधीनता संग्राम और देशी रियासतों में भी उसकी प्रतिक्रिया और प्रतिध्वनि स्वरूप आरंभ हुये जन आन्दोलन ने राजस्थान के साथ नेहरू परिवार के उन नये सम्बन्धों की भूमिका बनाई। रियासती राजनीति के प्रति कांग्रेस की आरंभिक उदासीनता और उपेक्षा के बावजूद अंग्रेजों, राजा-महाराजाओं और जागीरदारों की तिहरी गुलामी भोगने वाली राजस्थानी जनता के नायक और मुक्ति-दाता बनकर पं० जवाहरलाल नेहरू इस प्रदेश के उद्धार कार्य में प्रवृत हुए। देश के स्वतंत्रता संग्राम के इस पक्ष का अभी तक विस्तृत और वैज्ञानिक आधार पर ऐतिहासिक विश्लेषण नहीं हुआ है।

इस पृष्ठभूमि को संक्षेप में बताने का प्रयत्न करते हुये हम १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष के संदर्भ तक जाना चाहेंगे। स्वतंत्रता के लिये भारतीय सैनिकों और उनके सामंती नेताओं के उस सशस्त्र प्रयत्न को अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिपूर्ण क्रूरता से विफल कर दिया था। फिर भी आग भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। यद्यपि प्रत्यक्ष में सारे भारत में मरघट की-सी

शुरू-शुरू में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रही थी। वह अंग्रेजों और राजा-महाराजाओं, दोनों से एक साथ टक्कर लेना नहीं चाहती थी और इसी कारण उसने रियासतों के मामलों में सीधा हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई थी कांग्रेस के नेता यह धारणा लेकर चल रहे थे कि स्वराज्य का प्रश्न हल हो जाने पर देशी रियासतों की समस्या तो अपने-आप आसानी से हल हो जायेगी।

इसके विपरीत रियासतों की जनता की बेतावी बढ़ती जा रही थी। राजा-महाराजाओं की निरंकुशता और सामन्ती शोषण के विरुद्ध असंतोष तीव्र होता जा रहा था और जब-तब जन आन्दोलन के रूप में फूट भी पड़ता था। अंग्रेज अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिये राजाओं को ढाल की तरह प्रयुक्त कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश भारत में चलने वाले आन्दोलनों का रियासतों पर भी कोई प्रभाव पड़े। भारत सरकार का पोलिटीकल डिपार्टमेंट राजा-महाराजाओं पर बरावर यह दबाव डालता था कि जनता के आन्दोलनों को येनकेन प्रकारेण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से नहीं पनपने दिया जाय।

कांग्रेस ने अपने जीवन के प्रारंभिक तीस वर्षों में केवल एक बार देशी रियासतों के मामलों में अपनी दिलचस्पी दिखाई थी। १८९६ ई० में जब झालावाड़ की छोटी-सी रियासत के राजराणा जालिमसिंह को गद्दी से उतारा गया था तो कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश सरकार से यह मांग की थी कि भविष्य में सार्वजनिक अदालती जांच के बिना किसी भी राजा-महाराजा को गद्दी से न उतारा जाय। इस अपवाद को छोड़कर कांग्रेस ने कभी देशी रियासतों के लिये कभी कुछ नहीं कहा था। जो हो, जिन आदर्शों और विचारों को लेकर कांग्रेस तत्कालीन ब्रिटिश भारत में जनता को जगा रही थी, उनसे देशी रियासतों की जनता भी अछूती नहीं रह सकती थी। परोक्ष रूप से ही सही, कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की विचारधारा रियासतों की जनता को भी उद्वेलित करने लगी और शीघ्र ही राजस्थान की बाईस रियासतों-रजवाड़ों के

वीचों-वीच स्थित अजमेर मेरवाड़ा राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र वन गया जहां राजपूताना और मध्य भारत की रियासतों के लिये कर्मठ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का संगठन होने लगा।

१९१८ ई० के दिसम्वर में जव राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ तो राजस्थान और मालवा के निवासी राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ अपना नाता जोड़ने के लिये सक्रिय हुये और विजयसिंह पथिक, गणेश-शंकर विद्यार्थी, चांदकरण शारदा और जमनालाल वजाज प्रभृति के प्रयत्नों से वहीं "राजपूताना मध्य भारत सभा" के नाम से एक सार्वजनिक संगठन खड़ा किया गया। अगले ही वर्ष पथिक और रामनारायण चौधरी ने वर्धा में "राजस्थान सेवा संघ" की स्थापना की जो शीघ्र ही अजमेर स्थानांतरित हो गया। इस संघ के आने पर अजमेर में ही दो राजनीतिक सम्मेलन भी हुये जिनमें राजस्थान की जनता की स्थिति और समस्याओं पर विचार-विमर्श किया गया। वर्धा से प्रकाशित "राजस्थान केसरी" और वाद में अजमेर से प्रकाशित "नवीन राजस्थान" साप्ताहिक भी जन-जागृति की इस लहर को वढ़ावा दे रहे थे।

विभिन्न रियासतों में अनेक सार्वजनिक संस्थायें वनने लगीं और चाहते न चाहते भी देशी रियासतों के प्रति कांग्रेस की रीति-नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते गये। १९२० ई० में कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में न केवल अपना ध्येय परिवर्तन किया, वरन् एक प्रस्ताव द्वारा राजाओं से भी अनुरोध किया कि वे अपनी प्रजा को तुरन्त उत्तरदायी शासन देने के कदम उठायें। कांग्रेस का ध्येय अव "शांतिपूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना" था। इस अधिवेशन में कांग्रेस संगठन को भाषाई आधार दिया गया और अन्य देशी रियासतों के साथ राजपूताना को भी इस राष्ट्रीय संस्था में प्रतिनिधित्व मिला। सेठ जमनालाल वजाज तव कांग्रेस कार्यसमिति में लिये गये।

महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरणा लेकर राजस्थान में विजौलिया का किसान आन्दोलन चला जिसका समझौता अंग्रेज सरकार

के वीच-वचाव से हुआ। किसानों की अधिकांश मांगें स्वीकार करली गईं। इस आन्दोलन की सफलता ने राजस्थान में गांधीवादी नेताओं और उनके असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन की सार्थकता सिद्ध कर दी। १९२७ ई० में तो कांग्रेस ने रियासती जनता को स्पष्ट आश्वासन दिया कि उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिये उनके उचित और शान्तिपूर्ण प्रयत्नों को कांग्रेस की सहानुभूति और सहायता मिलेगी। इसी वर्ष अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की स्थापना हुई। कांग्रेस ने अपने हरिपुरा अधिवेशन (१९३६ ई०) में रियासती जनता को अपने पृथक् संगठन स्थापित करने का स्पष्ट आदेश दिया और इसके फलस्वरूप सभी रियासतों में प्रजामण्डल, प्रजा परिषद्, लोक परिषद् आदि नामों से संगठन वनने लगे। राजाओं ने अपने अंग्रेज प्रभुसत्ताधारियों की सलाह से "पब्लिक सोसाइटीज़ एक्ट" लागू कर इस वाढ़ को रोकने की पूरी कोशिश की और इस कशमकश के कारण जयपुर, सिरोही और अन्यान्य रियासतों में सत्याग्रह आन्दोलन हुये।

इस राजनीतिक जाग्रति और संगठन-प्रवृत्ति को संभालने के लिये अव सचमुच ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो रियासती जन-आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा के साथ जोड़कर आगे वढ़ाये और पूर्ण स्वराज्य की मंजिल तक ले जाये। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने १९३९ में अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद का अध्यक्ष वनकर वांछित नेतृत्व प्रदान किया और रियासती जनता तव राष्ट्रीय कांग्रेस से घनिष्ठ रूप से सम्वद्ध हो गई। जोधपुर के लोकनायक जयनारायण व्यास इस परिषद् के महामन्त्री थे। सभी प्रजा मण्डल और प्रजा परिषदें इस लोक परिषद् के घटक वने। लोक परिषद् ने अपने लुधियाना अधिवेशन में तभी स्पष्ट शव्दों में यह मांग भी की कि वीस लाख से कम जनसंख्या अथवा पचास लाख से कम आय वाले छोटे रजवाड़ों को उनके पड़ौसी प्रान्तों में मिला दिया जाना चाहिए।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू १९२९ ई० में अपने पिता पण्डित

मोतीलाल नेहरू के साथ शायद पहली वार राजस्थान में आये थे। पिता-पुत्र तव पुष्कर गये थे। उस यात्रा का रिकार्ड वहां के एक पण्डे की वही में दर्ज है। इसके दस साल वाद जव पण्डितजी परिषद् के अध्यक्ष वन गये तो राजस्थान के साथ उनके सम्वन्ध और भी अधिक घनिष्ट हो गये। १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में गिरफ्तार होने के वाद जव १९४५ में वे रिहा हुये तो जयपुर आये। काश्मीर के नेता शेख मोहम्मद अव्दुल्ला उनके साथ थे। रामनिवास वाग में म्यूजियम के पीछे दोनों ने विशाल जन-समुदाय को सम्वोधित किया था और पण्डितजी ने तालियों की गड़-गड़ाहट के वीच यह उद्घोपणा भी की थी कि रियासतों के जागीरी गांवों में वहां के ठाकुर और जागीरदार तिरंगे झंडे को नहीं फहराने देते, लेकिन उन्हें समझ लेना चाहिए कि अव तो दिल्ली के लाल किले पर भी तिरंगा फहराने में देर नहीं है। इसके दो ही वर्षों वाद उन्होंने स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में लालकिले पर सचमुच तिरंगा फहरा दिया और राजस्थान के सारे गढ़-कोट भी इसके तीन रंगों में आत्मसात् हो गये।

वयालीस के आन्दोलन ने जयपुर के प्रजामण्डल में दरार डाल दी थी। यहां के प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल की सहयोग की नीति इसके लिये जिम्मेदार थी। कुछ प्रमुख नेताओं ने आन्दोलन न करने का निश्चय किया और कुछ ने अलग होकर "आजाद मोर्चा" वनाया। १९४५ में जव पण्डितजी जयपुर आये तभी जाकर वह दरार पटी। "आजाद मोर्चे" को उसके नेताओं वावा हरिश्चन्द्र, रामकरण जोशी प्रभृति ने पण्डितजी को समर्पित कर प्रजामण्डल की एकता को पुनः स्थापित किया।

जवाहरलाल जी इस यात्रा में अपनी सुपुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ पुष्कर भी गये थे और इसका लेखा भी वहां के पण्डे की वही में उसी स्थान पर दर्ज है जहां १९२९ में मोतीलालजी के आने का विवरण है।

१९४५ ई० के अन्तिम दिनों में ही अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् का अधिवेशन उदयपुर में आयोजित किया गया। यह पहला

अवसर था कि इस परिषद् का अधिवेशन राजस्थान में किसी देशी रियासत की सीमा में हुआ। अध्यक्ष के आसन पर पण्डित ज़वाहरलाल नेहरू ही विराजमान थे। इस अधिवेशन में छोटी रियासतों के विलय तथा समूहीकरण पर भी विचार हुआ। यह मन्तव्य प्रकट किया गया कि भारतीय संघ में स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित हो सकने तथा अपनी जनता की सामाजिक एवं आर्थिक समृद्धि के आधुनिक स्तर को बनाये रखने योग्य इकाइयों को छोड़कर अन्य राज्यों को साधारणतया पड़ौसी प्रान्तों में मिला दिया जाय।

इस ऐतिहासिक अधिवेशन के बाद मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रतिनिधि वहां के मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किये गये।

उदयपुर-जयपुर और दूसरे राज्यों में तो कांग्रेस के साथ सहयोग की नीति अपनाई जा रही थी, किन्तु आगरा की पड़ौसी रियासत भरतपुर में तब भी स्थिति बड़ी डांवाडोल थी। १९४७ ई० के आरम्भ में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड वावेल और बीकानेर के महाराजा शार्दूलसिंह भरतपुर के जलपक्षी अरण्य में शिकार के लिये जब लोगों को बेगार में पकड़ा गया तो भरतपुर प्रजा परिषद् ने कड़ा विरोध किया। पुलिस ने इस पर बड़ा दमनचक्र चलाया। किले के बाहर धरना देने वाले सत्याग्रहियों पर सैनिकों ने संगीनों और भालों से हमला बोला जिसमें अनेक कार्यकर्ता घायल हुये। इनमें महिलायें भी थीं। बहुत से कार्यकर्ताओं को तो जेल में बंद कर दिया गया। इस दमन और अत्याचार के विरोध में भरतपुर में २२ दिन तक हड़ताल चली। दमन का दौरदौरा यहां तक चला कि भुसावर में वहां के प्रमुख कार्यकर्ता रमेश स्वामी को एक पुलिस अधिकारी के इशारे पर बस से कुचल डाला गया। अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् के अध्यक्ष के नाते पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने निजी सचिव द्वारकानाथ कचरू को इस सारी स्थिति की जांच करने के लिये भरतपुर भेजा और उन्होंने इस जांच रिपोर्ट में उस रियासत की मनमानी और दमन-नीति का पूरा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया।

राजस्थान को शीघ्र ही ऐसे निरंकुश शासन और स्वेच्छाचारिता से छुटकारा मिल गया। १५ अगस्त, १९४७ को भारत ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा की। दिल्ली के लाल किले और वायसराय भवन के साथ-ही-साथ आबू में राजपूताना के ए० जी० जी० के भवन पर भी ब्रिटिश साम्राज्य के यूनियन जैक के स्थान पर तिरंगा फहरा उठा। पूरे १२९ वर्षों के बाद अंग्रेजों की प्रभुसत्ता से राजस्थान के बाईस रजवाड़ों को मुक्ति मिली। देश के विभाजन की घोषणा के तुरन्त बाद अनेक संशयों और आशंकाओं के रहते भी सभी राजस्थानी नरेशों ने निर्धारित तिथि से पहले ही एक-एक कर भारतीय संघ में सम्मिलित होने के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर दिये थे और स्वतंत्रता दिवस को उन्होंने शेष भारत के साथ-ही-साथ आजादी की हवा में सांस ली।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनन्तर राजस्थान की रियासतों के विलय और एकीकरण का वह नया और महान ऐतिहासिक प्रसंग आरंभ हुआ जिसकी चरम परिणति ३० मार्च, १९४९ को वर्तमान राजस्थान के निर्माण के साथ हुई। ३,६१,१२० वर्गमील में विस्तृत और डेढ़ करोड़ जनसंख्या वाली बाईस रियासतों को एक सूत्र में गूंथकर यह नया और भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य बनाया गया था जिसका उद्घाटन जयपुर में भारत के बिस्मार्क और लौह-पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया था। तब अनहोनी-सी लगने वाली यह प्रक्रिया चार चरणों में पूरी हुई थी। सबसे पहले १७ मार्च, १९४८ को अलवर में मत्स्य संघ का उद्-घाटन हुआ जिसमें अलवर, भरतपुर, धौलपुर, और करौली की रियासतें शामिल हुईं। इसके एक सप्ताह बाद ही राजस्थान संघ बना जिसमें कोटा, बूंदी, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़, प्रतापगढ़, किशनगढ़, शाहपुरा और टोंक की रियासतें मिलीं। तीसरे चरण में पहले और दूसरे चरण की सारी रियासतों के साथ उदयपुर या मेवाड़ की प्राचीनतम और अन्यतम रिया-सत भी आ मिली और इसका उद्घाटन १८ अप्रैल, १९४८ को उदयपुर में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ही किया। चौथे चरण में राजस्थान की

शेष रियासतें—जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर—भी राजस्थान को 'विशाल' बनाने के लिये इसमें सम्मिलित हो गईं।

जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व, प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही राजस्थान जैसे पिछड़े राज्य ने जो एक दीर्घकाल तक दोहरी और तिहरी गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा था, भारत में सबसे पहले पंचायती राज लागू करने का हौसला दिखाया। नागौर के मेला मैदान में जिन्होंने २ अक्टूबर, १९६२ को दीप जलाकर पण्डितजी को पंचायती राज्य का समारंभ करते हुये देखा और सुना है, वे उस दिन को नहीं भूल सकते और न ही इस बात को कि देशी राज्य लोक परिषद और उसके उदयपुर अधिवेशन से लेकर नागौर के इस समारोह तक का इतिहास ही तो राजस्थान के कायाकल्प का इतिहास है।

१२. ऐतिहासिक भूमिका

इतिहास ने जवाहरलाल नेहरू को भारत को पराधीनता के लौह-पाश से मुक्त कराने के साथ-साथ राजस्थान जैसे परम्पराप्रिय, और पिछड़े हुये प्रदेश को सही अर्थों में स्वाधीन भारत का एक स्वस्थ और सबल अंग वनाने की भी भूमिका सौंपी थी जिसे उन्होंने अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों के साथ वहुत कुशलतापूर्वक निभाया। भारत की गरीबी को मिटाने के लिये उन्होंने सुनियोजित विकास का मार्ग अपनाया था। सारे भारत में ज्ञान और विज्ञान की ज्योति का प्रकाश फैलाने के लिये वे कृत संकल्प थे और वेगवती नदियों को थामकर खड़े होने वाले विशाल वांधों और नहरों, वज्ञानिक प्रयोगशालाओं और भीमकाय कल कारखानों को आधुनिक भारत के तीर्थ स्थान वताते थे। उनके प्रधानमंत्रित्व और प्रशासनिक नेतृत्व में राजस्थान ने भी अपने पिछड़ेपन की विरासत को छोड़कर ऊवड़-खावड़ पगडंडियों पर चलते-चलते अपनी प्रगति और योजनावद्ध विकास का मार्ग प्रशस्त किया। एक सामंती, स्वेच्छाचारी और जी-हजूरी की परम्परा से निकलकर राजस्थान जैसा प्राचीन प्रदेश भी अपने आपको एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और लोक-कल्याणकारी राज्य के सांचे में ढालने के लिये तैयार हुआ।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्रता संग्राम के सुदक्ष सेनापति, राजनीतिज्ञ, प्रशासक और राजनेता थे, किन्तु इससे भी वढ़कर वे एक वैज्ञानिक दृष्टि वाले चिन्तक, भावुक विद्वान और विलक्षण इतिहासकार भी थे। राजस्थान की ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक कमजोरियां

उनसे छिपी नहीं थीं, किन्तु इस प्रदेश में जो कुछ भी मूल्यवान और श्लाघ्य हो सकता था, वह भी उनकी सूक्ष्म दृष्टि से ओझल नहीं था। १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में अपनी गिरफ्तारी के वाद अहमदनगर के किले में नजरबंद रहते समय उन्होंने जो "हिन्दुस्तान की कहानी" लिखी, उसमें राजस्थान का यह गौरवमय और उज्ज्वल प्रसंग देना वे नहीं भूले। जयपुर जैसे सुन्दर नगर के संस्थापक सवाई जयसिंह के लिये वे लिखते हैं :

"दूसरा, किन्तु एक भिन्न प्रकार का भारतीय राजनीतिज्ञ राजपूताना में जयपुर का सवाई जयसिंह था। उसका समय (रणजीतसिंह से) कुछ पहले पड़ता है, १७४३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई थी। औरंगजेव की मृत्यु के वाद विशृंखलता का जो समय आया, वह उसी के दौरान विद्यमान था। वह वहुत होशियार और अवसर को पहचानने वाला था और इसलिये वह तेजी से हो रहे अनेक परिवर्तनों और आघातों को सह गया। उसने दिल्ली के शाहंशाह की सार्वभौम सत्ता को स्वीकार किया। जव उसने देखा कि मरहठों की वाढ़ को रोकना कठिन है तो उसने वादशाह की ओर से उनसे समझौता किया। किन्तु मेरी दिलचस्पी उसके इस राजनीतिक अथवा सैनिक जीवन में नहीं है। वह एक वीर योद्धा और सिद्धहस्त कूटनीतिक था, पर इनसे भी कहीं अधिक कुछ और था। वह एक गणितज्ञ और खगोलशास्त्री था, एक वैज्ञानिक और नगर-नियोजक था और इतिहास के अध्ययन में भी उसे दिलचस्पी थी।

"जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, वनारस और मथुरा में वड़े यंत्रालय वनवाये। पुर्तगाली मिशनरियों से पुर्तगाल में खगोल-विद्या की प्रगति के विषय में जानकर उसने एक मिशनरी के साथ अपने स्वयं के आदमी पुर्तगाल के राजा इमान्युअल के दरवार में भेजे। इमान्युअल ने डि-ला हायर की सारणियों के साथ अपने राजदूत ज़ेवियर डी सिल्वा को जयसिंह के पास भेजा। इन सारणियों को अपनी सारणी से मिला देखने के वाद जयसिंह इस नतीजे पर पहुंचा कि पुर्तगाली सारणियां कम सही हैं और उनमें कई गलतियां हैं। इसका कारण उसने वहां प्रयुक्त यंत्रों के

'छोटे व्यासों' को माना।

"जयसिंह निस्संदेह भारतीय गणित से भली-भांति अवगत था, उसने प्राचीन ग्रीक ग्रंथों का भी अध्ययन कर लिया था और गणित के क्षेत्र में हाल की यूरोपीय प्रगति के विषय में भी जानता था। उसने कुछ ग्रीक पुस्तकों (यूक्लिड आदि), सामान्य और वृत्तीय त्रिकोणमिति तथा 'लोगारिद्म्स' की रचना और उपयोग पर यूरोपीय ग्रंथों का भी संस्कृत में अनुवाद करवाया था। खगोल विद्या पर अरवी की पुस्तकों के भी उसने अनुवाद कराये थे।"

"उसने जयपुर का नगर वसाया। नगर-रचना में रुचि रखने के कारण उसने अपने समय के अनेक यूरोपीय नगरों के नक्शे एकत्र कराये और फिर अपना स्वयं का नक्शा वनाया। उस समय के प्राचीन यूरोपीय नगरों के नक्शे जयपुर के म्यूजियम में सुरक्षित हैं। जयपुर का नगर इतनी वुद्धिमत्ता के साथ भली-भांति वसाया गया कि यह अव भी नगर-रचना का एक आदर्श माना जाता है।"

"जयसिंह ने यह सव और इससे भी कहीं अधिक काम अपेक्षाकृत छोटे से जीवन में कर डाले और वह भी निरन्तर चलने वाली लड़ाइयों और राज-दरवार के षड्यंत्रों के वीच जिनमें वह स्वयं जव-तव उलझा रहता था। नादिरशाह का हमला जयसिंह की मृत्यु के ठीक चार वर्ष पूर्व हुआ था। जयसिंह कहीं भी और किसी भी समय में हुआ होता, वह एक उल्लेखनीय व्यक्ति ही होता। वड़े महत्व की वात यह है कि वह राजपूताना के सामंतवादी वातावरण में उभरा और एक वैज्ञानिक के रूप में उसने काम किया, ऐसे समय में, जो भारतीय इतिहास के अंधकारपूर्ण युगों में से एक माना जाता है जिसमें लड़ाई-झगड़े और विशृंखलता आये दिन की वातें थीं। इससे पता चलता है कि भारत में वैज्ञानिक शोध की भावना समाप्त नहीं हो गई थी और कुछ ऐसे तत्व क्रियाशील थे जिन्हें यदि अपनी पूर्णता तक काम करने का अवसर मिलता तो परिणाम वहुत उपयोगी निकल सकते थे। जयसिंह किसी अमैत्रीपूर्ण और प्रतिकूल वाता-

वरण में अनुपयुक्त रहने वाला नहीं था। एकाकी चिन्तक भी नहीं था। वह अपने ही युग की उपज था और उसने वड़ी संख्या में वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं को अपने साथ काम करने के लिये जुटाया था। इनमें से कुछ को उसने अपने दूत वनाकर पुर्तगाल भेजा और सामाजिक रीति-रिवाज अथवा प्रतिवंध ने भी उसे ऐसा करने से नहीं रोका। ऐसा लगता है कि देश में शास्त्रीय और तकनीकी, दोनों ही प्रकार के वैज्ञानिक काम करने के लिये काफी अच्छा मसाला था और आवश्यकता थी तो वस यही कि ऐसे काम करने का अवसर मिलता। वह अवसर वहुत काल तक नहीं आया। जव सारी उखाड़-पछाड़ और अराजकता समाप्त हो गई, तव भी हकूमत करने वालों ने वैज्ञानिक कार्य को कोई प्रोत्साहन नही दिया।"

ऐसा अवसर भारत की स्वतंत्रता और हुकूमत के सर्वोच्च पद पर जवाहरलाल नेहरू के आसीन हो जाने पर ही आया। स्वाधीन भारत की सरकार, विशेषत: उसके प्रधान मंत्री ने वैज्ञानिक अध्ययन-मनन, शोध-अनुसंधान और रचना एवं निर्माण को देश के पुनर्निर्माण और भावी विकास का आधार माना। भारत अपने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के नये लक्ष्य प्राप्त करने के लिये नई जय-यात्रा पर निकल पड़ा।

१९४८ में स्वयं जवाहरलाल नेहरू द्वारा उदयपुर में और ३० मार्च, १९४९ को जयपुर में सरदार पटेल द्वारा उद्‌घाटित राजस्थान ने १९५२ में पहले आम चुनाव में मतदान करके पहली वार अपने निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों की विधान सभा वनाई और सच्चे अर्थों में सारे राज्य का शासन जनता के लिये, जनता द्वारा होने लगा। इसके वाद १९५७ और फरवरी, १९६२ में क्रमश: दूसरे और तीसरे आम चुनाव हुये और राजस्थान ने यह सिद्ध कर दिया कि जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व और मार्ग-दर्शन में सारे भारत में जो लोकतंत्र स्थापित हुआ है, वह राजाओं और जागीरदारों की कही जाने वाली इस भूमि में भी स्थायित्व लिये आया है।

१९५५ ई० में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ही उन हजारों गाडोलिया लुहारों का नेतृत्व कर चित्तौड़गढ़ के ऐतिहासिक दुर्ग में प्रवेश कराया जिनके पूर्वजों ने चित्तौड़ स्वतन्त्र न होने तक उसमें न लौटने की शपथ ले रखी थी। आजादी का यह प्रण अब पूरा हो चुका था अतः चित्तौड़ गढ़ में उनके प्रवेश पर बड़ा अविस्मरणीय समारोह आयोजित किया गया था।

देश के अन्य राज्यों के साथ राजस्थान में भी आरम्भ की गई सामुदायिक विकास योजनाओं ने गाँव-गाँव में ठाकुरों और जागीरदारों के परम्परागत नेतृत्व के स्थान पर नवीन और जनता के प्रतिनिधि नेतृत्व का विकास किया और सदियों के पिछड़ेपन को दूर करने की होड़-सी लग गई। राजस्थान देश में पहला राज्य था जिसने २ अक्टूबर, १९५९ ई० को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्म दिन के अवसर पर सत्ता के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की साहसिक योजना सारे राज्य में लागू की। ग्राम स्तर पर पंचायत, तहसील अथवा खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद् विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित करने वाले सक्रिय घटक बने और गाँवों का अभ्युत्थान कार्य गाँव वालों के ही हाथ में आ गया। वे स्वयं अपने भाग्य-निर्माता बन गये।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस बहुचर्चित और बहुप्रचारित लोकराज योजना का उद्घाटन जवाहरलाल नेहरू ने नागौर में राजस्थान के विशाल ग्रामीण समुदाय के सामने दीप जलाकर किया था। इस ऐतिहासिक अवसर पर उनके भाषण के कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं:—

"राजस्थान भारत का एक माने में हृदय है, भारत का नक्शा भी देखो तब भी एक उसका दिल-सा है, इतिहास में भी रहा है। राजस्थान के लोग एक-एक जिले से, एक-एक गाँव से आए, उन्होंने यह निश्चय किया कि इस भारत को, लोकतन्त्र को वह उठायेंगे और यहाँ की सरकार ने कानून बनाया व उनके ऊपर, जनता के ऊपर यह जिम्मेदारी सौंप दी। यह बड़ा काम है। ऐतिहासिक काम है।

"राजस्थान की जमीन वहुत अच्छी है। अभी वहाँ उधर गंगानगर के पास सूरतगढ़, आप कुछ लोग वहाँ से आते हैं, वीरान जगह थी। कुछ दिन हुए, वहाँ पानी आया, शायद भाखरा का। वहाँ वड़ी-वड़ी मशीनें हमने लगायी हैं, और कैसी जवर्दस्त फसल वहाँ हुयी है, जो कभी हुयी नहीं थी। राजस्थान की जमीन तो सोना है। लेकिन सोना तव है, जव इसमें कुछ पानी का इशारा दिया जाये। वह भी हमें, हल्के-हल्के आशा है, इसका प्रवन्ध होता जाएगा। लेकिन यह सव वातें तव होती हैं, जव परिश्रम किया जाये, लोग तगड़े हों, मेहनती हों।

"...हमेशा याद रखें कि आपने जो नया कदम उठाया है, तो सव लोग आपकी तरफ देखेंगे। अगर आप भूल गये, अपनी प्रतिज्ञा, अगर आप आपस में दलवन्दी करने लगें, लड़ने लगें, तव आप काम को खराव करेंगे और आप भी वदनाम होंगे। जव वड़े काम को उठाते हैं तो हमको भी वड़े आदमी वन जाना चाहिए। छोटे आदमी की तरह से काम नहीं करना। आपने वड़ा कदम उठाया है, आप सव पंच, सरपंच और प्रधान और प्रमुख लोगों ने एक वड़ा कदम उठा कर वड़ी जिम्मेदारियां ओढ़ी हैं, सारे राजस्थान की जनता को वढ़ाने की। वड़ी वात है ना, वड़े गर्व की वात है, वड़ी जिम्मेदारी की है। और आपको कभी गलत वात नहीं करनी है, जिससे वदनाम करें अपने को और अपनी पंचायत से अपने राजस्थान को। जरा ऊंचा रहना है। ऊंची मिसाल सवको देनी है। ऐसे करियेगा तो आपका दिल भी ठंडा होगा, मजवूत होगा और तरक्की होगी और वाद में जो लोग आयेंगे, कहेंगे कि देखा कैसा, इन्होंने मजवूती से जनतंत्र को राजस्थान में कायम किया।

"आप इस काम को यह पंचायत और पंचायत समिति और यह जो नक्शा वना है, इस काम को आप जोरों से चलायें, जिम्मेदारी से चलायें और आप सहकारी संघ चलायें, तो आप देखेंगे, देखते-देखते राजस्थान का कैसा रूप वदलता है। आपकी हालत अधिक अच्छी होती है और उसके साथ सवसे वड़ी वात कि आपकी शक्ति वढ़ती है, भरोसा वढ़ता है, सिर

ऊंचा होता है और इस तरह से और भी तरक्की होती है। मेरा आशीर्वाद तो जरूर है आपको और वधाई और मुझे विश्वास है यह कदम, इससे राजस्थान को लाभ होगा। याद रखो कि यह ऐतिहासिक कदम है। जैसे-जैसे कदम उठे, अंग्रेजी राज्य खतम होकर यहाँ स्वराज्य आया। रजवाड़े अलग हुए। वे भी एक जनता के राज्य में शरीक हुए। जागीरदारी प्रथा का अन्त हुआ। एक-एक कदम है। यह देखिए कि जिसमें हल्के-हल्के राज का काम और राज्य की शक्ति फैलती जाती है। अब सारी जनता के हाथ में वागडोर आ गयी। पहले दो चीजें थीं राजा और प्रजा। अब वो दो चीजें नहीं रहीं। क्योंकि राजा भी प्रजा हो गया, प्रजा भी राजा हो गयी।"

जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा और प्रोत्साहन से सारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं का समारंभ हुआ और इनके अन्तर्गत राजस्थान में भी कुछ वड़े काम आरंभ किये गये। राजस्थान के साधन-स्रोत अब अलग-अलग छोटी-वड़ी रियासतों में विभक्त नहीं थे और यह राज्य अपनी डेढ़ करोड़ जन-संख्या के लिये वड़े स्तर पर ऐसे काम हाथ में ले सकता था जो भावी पीढ़ियों के लिये भी वरदान सिद्ध हों।

इनमें चम्बल घाटी के विकास की वहुद्देश्यीय योजना पहली योजना थी। भारत की महासरिता गंगा की सबसे वड़ी सहायक नदी यमुना है और यमुना की सबसे वड़ी सहायक है चम्बल। प्राचीन ग्रंथों में चर्मण्यवती नाम से कदाचित् एकमात्र ऐसी वड़ी नदी है जिसका सिंचाई तथा विजली उत्पादन के लिये कोई उपयोग सोचा तक नहीं गया था। देश के स्वतंत्र हो जाने और राजस्थान के एकीकरण के अनन्तर इस दिशा में विचार आरंभ हुआ। और मध्यप्रदेश तथा राजस्थान, दोनों पड़ौसी राज्यों, ने वरावर की पूंजी लगाकर चम्बल से सिंचाई और विजली प्राप्त करने के लिये परस्पर सहयोग करने का समझौता किया। यह समझौता अन्तर्राज्य सहयोग का एक आदर्श वताया गया है। इससे जो योजना वनी उसके अन्तर्गत मध्यप्रदेश की सीमा से लेकर कोटा तक फैली पर्वतीय उपत्यका में वहने वाली वेगवती चम्बल को वांधने के लिये चार वांध और तीन

पनविजलीघर वनाने का निश्चय किया गया।

पूरी योजना को तीन चरणों में विभाजित किया गया और १९५४ ई० में राजस्थान-प्रदेश सीमा पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ही गांधी सागर वांध का शिलान्यास किया। साथ ही कोटा नगर के पश्चिम में एक विशाल सिंचाई वांध का निर्माण-कार्य भी आरंभ हो गया। यह दोनों वांध और गांधीसागर का पनविजलीघर और सिंचाई वांध से निकलने वाली दोनों विशाल मुख्य नहरें १९६० में वनकर पूरी हुईं। यही इस योजना का प्रथम चरण था जो ६४ करोड़ ७१ लाख के व्यय से सम्पन्न हुआ था। राजस्थान के आधुनिक तीर्थ, कोटा, के सिंचाई वांध पर आयोजित समारोह में इस महान् निर्माण-कार्य को जवाहरलाल नेहरू ने ही राष्ट्र को समर्पित किया था।

चम्वल के प्रवल प्रवाह को रोकने वाले उस विशाल वांध से टकराने वाली लहरों में आज भी जैसे नेहरूजी के भाषण के यह शव्द गूंज रहे हैं जो उन्होंने इस अवसर पर दिया था :

"अभी आपने सुना, कैसे यह वराज, यह वांध वना, कितना लम्वा, कितना चौड़ा, कितना गहरा। जो कि आवश्यक वातें हैं, क्योंकि यह काम जो आपको दिखता है, इसके पीछे कितनी मेहनत है, परिश्रम है, सालों का परिश्रम है, कोई जादू से नहीं खड़ा हो गया है। लोगों के परिश्रम से हुआ, लोगों के पसीने से और कहीं-कहीं खून से भी हुआ है। मैं इसकी तरफ देखता था, जो यह कोटा वराज खड़ा हुआ है, और इस सूर्य की अस्त होने की किरणों से चमक रहा है, और इस सुंदर वराज को खाली देखता नहीं था वल्कि सोचता था कि कितना इससे आपको इधर-उधर के रहने वाले, पास नहीं वल्कि दूर-दूर राजस्थान के रहने वाले, उनको कितना लाभ होगा। ५-१० वर्ष, २० वर्ष, ५० वर्ष, १०० वर्ष तक आज की चीज नहीं है, यह तो एक चीज वनी है, इससे आपके वच्चे, वच्चों के वच्चे और उनके वाद भी लाभ उठाये जायें, यह चित्र मेरे सामने आता था और फिर मैं आप लोगों को देखता था।" और "आजकल आप सुनते

हैं सहकारिता का, सहकारी संघ का, उसके माने क्या हैं। चाहे वो अपने गांव में खेती के बारे में करें चाहे आप धन्धे में करें, उसके माने यह हैं मिलकर काम करने से शक्ति अधिक होती है और उससे लाभ हरेक को अधिक मिलता है। मोटी बात हमेशा मिलकर चलने में है। इसके माने यह हैं कि अगर हम भारत भर में यह सहकारिता की प्रथा चला दें, पूरी तौर से और भारत का सारा राज्य ही इसी ढंग से चले, तो कौन भारत का मुकाबला कर सकता है, दुनिया में, जब चालीस करोड़ आदमी इस तरह से चलें। सहकारिता का सिद्धान्त खाली एक सोसायटी बना देना, एक संस्था बना देने का नहीं है हम अपने देश को इस ढंग से चलाना चाहते हैं, इसी ढंग से जो कॉपरेशन के ढंग से सहकारिता के ढंग से मिल-जुलकर काम करें। अब यह आप अपने गांव में इसको करें तो आपके सामने कठिनाई आयेगी, आती है, आप जानते हैं। तो सोचो अगर देश में पांच, साढ़े पांच लाख गांव में इसको करें, और शहर में और सब में तो कितनी कठिन बात है। फिर भी हमें करना है, और इस तरह से हमें अपने देश की एक संस्था बनाना है, एक मजबूत मिली हुई चीज बनानी है।"

प्रथम चरण में ही जहां कोटा से सिंचाई के लिये पानी मिलने लगा, वहां गांधीसागर से पनबिजली। वहां के पनबिजली घर में पांच जनरेटर हैं जिनमें से चार २३ मेगावाट के और पांचवां २७ मेगावाट क्षमता का है। नवम्बर, १९६० से यह बिजलीघर ४२०.४८ मिलियन यूनिट पन बिजली उत्पादित और वितरित कर रहा है।

चम्बल के नैसर्गिक सीढ़ीदार प्रवाह-मार्ग में गांधी सागर पहली सीढ़ी था, जहां इसे रोककर, ऊपर से नीचे गिरने वाले पानी से शक्ति प्राप्त की गई। दूसरे चरण में निर्मित राणा प्रतापसागर ऐसी ही दूसरी सीढ़ी है। ३,७५० फुट लम्बे और १४० फुट ऊंचे इस भीमकाय बांध की जलग्रहण क्षमता १० लाख २७ हजार एकड़ फुट है। किन्तु इस संचित पानी का उपयोग गांधीसागर की तरह केवल बिजली बनाने तक ही सीमित नहीं है। यह विशाल जलाशय कोटा सिंचाई बांध का भी सहायक है और इससे

प्रथम चरण द्वारा सुलभ ग्यारह लाख एकड़ क्षेत्र की सिंचन क्षमता में तीन लाख एकड़ की और वृद्धि हो जाती है जिससे चम्वल योजना से सींचे जाने वाले कुल चौदह लाख एकड़ के लक्ष्य की पूर्ति होती है। इस प्रकार राणा-प्रतापसागर से जो ६ फरवरी, १९७०, को प्रधानमन्त्री, श्रीमती इन्दिरा-गांधी के हाथों राष्ट्र को समर्पित किया गया, चम्वल नदी घाटी योजना का सिंचाई पक्ष पूरा हो जाता है। इस पर २७.८४ करोड़ रुपये की लागत आई है।

राजस्थान की भावी समृद्धि की आधार इस नदी घाटी योजना के साथ जवाहरलाल नेहरू का आरंभ से ही सम्वन्ध रहा और पहले चरण की पूर्ति भी उनके सामने ही हुई। द्वितीय चरण का राष्ट्र को समर्पण श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया। यह सर्वथा उपयुक्त है कि तृतीय और अन्तिम चरण में वने वांध का नाम, जिसका उपयोग भी केवल विजली उत्पादन के लिये हो रहा है, 'जवाहरसागर' रखा गया है। कोटा से सोलह मील दक्षिण में यह वांध विकासशील राजस्थान की अपने महान् स्वर्गीय नेता को विनम्र श्रद्धांजलि है—उस नेता और राष्ट्रनिर्माता को जिसने आजादी की लड़ाई के वाद विकास और समृद्धि के सूत्रपात की ऐतिहासिक भूमिका भी निभाई।

१३. पिलानी, वनस्थली और स्वराज्य यात्रा

राजस्थान की दो शिक्षण संस्थाओं के कार्य और प्रगति के प्रति पण्डित जवाहरलाल नेहरू की गहरी दिलचस्पी रही। यह विशिष्ट संस्थायें हैं पिलानी और वनस्थली की, जिनकी देश व्यापी ख्याति है। इन दोनों को ही तीन-तीन बार नेहरू जी का स्वागत करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने का गौरव मिला था। पिलानी बिड़ला बन्धुओं की उदारता से एक शैक्षणिक नगरी बनी है तो वनस्थली पण्डित हीरालाल शास्त्री और उनकी पत्नी, श्रीमती रतन शास्त्री की लगन और निष्ठा से महिला शिक्षा के एक आदर्श केन्द्र के रूप में विकसित हुई है। अपनी स्थापना से लेकर आज तक यह दोनों ही संस्थायें राष्ट्रीयता के परिवेश में फूली-फली हैं।

पण्डित जी पहली बार ११ फरवरी, १९५० को पिलानी आये थे। पिलानी के निकट जीणी के विष्णु हवाई अड्डे पर वे वायुयान से पहुंचे थे और दस मिनट पहले आ जाने पर भी वे निर्धारित समय—नौ बजे ही—उतरे थे। श्री घनश्यामदास बिड़ला, अन्य सज्जन और अध्यापक उनके स्वागतार्थ वहां उपस्थित थे। श्री शुकदेव पाण्डे के शब्दों में वह देश के एक सर्वोच्च धनाढ्य और भारत मां को अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाले एक अमूल्य रत्न का मिलन था। एक ओर धनवान, बुद्धिमान तथा विशाल उद्योग-धन्धों का अधिपति था और दूसरी ओर त्याग, तपस्या का प्रतीक व भारत वासियों के हृदय का सम्राट था।[1]

---

[1]मेरे पिलानी के संस्मरण, शुकदेव पाण्डे, पृष्ठ १४४-१५६

जीणी पिलानी से पांच मील दूर है और यह दूरी मोटर में तय कर जब जवाहरलालजी पिलानी पहुंचे तो वहां उनके स्वागत के लिए अपार उत्साह था। सारा गांव ध्वजा-पताकाओं से सजाया गया था और रेतीली सड़कों पर पानी का गहरा छिड़काव किया गया था। जैसा नेहरू जी के आगमन पर सर्वत्र होता था, वहां भी दूर-दूर के गांवों की जनता उनके दर्शनार्थ उमड़ आई थी ? गांव के प्रवेश द्वार पर नेहरू जी और श्री घन-श्यामदास बिड़ला घोड़ों पर सवार हो गये और अपार भीड़ के जय जय-कार और हर्षध्वनि के बीच में से गुजरे।

इस यात्रा में पण्डितजी ने सभी स्कूलों का निरीक्षण किया। बिड़ला मांटेसरी स्कूल में नन्हें-मुन्नों की मधुर मुस्कान ने उन्हें मोह लिया और उन्होंने भी बच्चों को गोद में उठाकर और उनके छोटे-छोटे हाथों से माला पहनने के लिये सिर झुकाकर उन्हें रिझा दिया। छोटे-छोटे बच्चों से उन्होंने कुछ बातें कीं और एक अन्य प्राइमरी स्कूल—अर्जुन स्कूल-को भी देखा। यहाँ से पिलानी के बाजार में निकलते समय वे एक खुली "डैमरल" कार में बैठे थे, पर उन्हें वह बड़ी गाड़ी नहीं सुहाई और जीप में बैठना चाहा। तब वहाँ जीप केवल पुलिस वालों के पास थी और वही उनके लिए खाली कराई गई। जीप में ही वे अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में सारे गाँव में घूमे।

पिलानी के छात्र-छात्राओं की सामूहिक ड्रिल और पी० टी० का प्रदर्शन देखकर पण्डितजी बड़े प्रभावित हुए और पिलानी के आचार्य श्री शुकदेव पाण्डे से उन्होंने पूछा कि ऐसा प्रदर्शन करने की सफलता के पीछे क्या तैयारी है ? पाण्डेजी ने तब उन्हें उत्तर दिया था कि केवल इस प्रदर्शन के खातिर ही यह तैयारी नहीं की गई, पी० टी० और ड्रिल पिलानी के छात्र-छात्राओं के लिए एक नियमित नित्य-कर्म है और इस कारण ऐसे अवसरों पर विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ती।

छात्र-छात्राओं को स्वस्थ, चुस्त और फुर्तीला देखकर नेहरूजी इतने प्रसन्न थे कि वे खड़े-खड़े ही सारा प्रदर्शन देखते रहे और इसके बाद

सार्वजनिक सभा में भाषण करने के लिये गये। बोलने से पहले उन्होंने माइक पर कहा, "क्या आपको मेरी आवाज सुनाई दे रही है ?" इस पर एक ओर से "नहीं" जवाब मिला तो श्री शुकदेव पाण्डे ने कहा कि यह गलत है, जब आपका प्रश्न उस ओर तक सुनाई दिया है तभी तो जवाब दिया है। पण्डितजी ने जैसे अनसुनी करते हुए लोगों को आगे बढ़ आने का इशारा किया और यह कहना था कि बड़ी हड़बड़ मची और सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

जनसागर की ऐसी हिलोरें देखकर पण्डित जवाहरलाल नेहरू को जैसे बड़ा आनन्द आता था। जब उन्होंने पाण्डेजी को चिल्लाते और लोगों को बैठाने की कोशिश करते देखा तो वे बोले, "क्यों आप खामख्वाह तकलीफ करते हैं, आपका गला भले बैठ जाए, ये लोग तो बैठेंगे नहीं।" अब उन्होंने अपना भाषण आरम्भ कर दिया। और जैसे जादू सा असर हो गया। सभी एकदम शान्त और दत्तचित होकर मंत्र-मुग्ध-से उनका भाषण सुनने लगे। भारत के कोटि-कोटि जन के साथ उनका ऐसा तादात्म्य था। इस जन-समुदाय को ही वे भारत माता मानते थे।

बिड़ला बालिका विद्यापीठ के सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद पण्डितजी ने लड़कियों से पूछा भी "भारत माता कौन है ?" लड़कियां बेचारी क्या उत्तर देतीं इस गम्भीर प्रश्न का ! पण्डितजी ने स्वयं ही कहा, "तुम भारत माता हो। देश के सभी छोटे-बड़े लोग मिलकर भारत-माता हैं। हमारे पहाड़, नदियां, गांव, शहर सभी भारत माता हैं। इनकी सेवा ही भारत माता की सेवा है।"

तीन साल बाद, १९५३ में पण्डितजी दूसरी बार पिलानी आये। उन्हें तब सेन्ट्रल इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट का शिलान्यास करना था। 'विद्या विहार' का नया भवन बनकर तैयार हो चुका था और पण्डितजी ने इसमें साइन्स तथा इंजीनियरिंग कालेजों की प्रयोगशालाओं को बड़े ध्यानपूर्वक देखा। उनकी साज-सज्जा और उपकरणों को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। इंजीनियरिंग कालेज के छात्रों के लिये उन्होंने तब

अपना यह सन्देश भी टेप रिकार्ड करवाया था।

"तीन वर्ष हुए, मैं पिलानी आया था। इस अरसे में इस स्थान पर बड़ा परिवर्तन हुआ है। इसका बड़ा विकास हो गया है। स्पष्ट है कि पिलानी का शिक्षण केन्द्र वड़ी तेजी से बढ़ रहा है। यह ऐसा स्थान है जिसमें वड़ी जीवन शक्ति है और निश्चय ही यह वढ़ेगा। विकास की इन सब प्रवृतियों से मैं प्रसन्न हुआ हूं।

"किन्तु अभी इस बात का पता चलना बाकी है कि इन वड़ी इमारतों में किस प्रकार के लड़के-लड़कियों का पालन-पोषण हो रहा है। ऊपर से देखने पर तो वे बिल्कुल ठीक लगते हैं, किन्तु मेरे लिए उनके ज्ञान की गंभीरता का अनुमान लगाना कठिन है। वैसे इसकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि भविष्य इसका निर्णय करेगा। विड़ला शिक्षण केन्द्र अथवा वस्तुतः कोई भी शिक्षण केन्द्र कसौटी पर तभी कसा जाता है जव उस केन्द्र से निकले हुए लोग राजस्थान या विशाल भारत की सेवा के लिये वाहर निकलें। सेवा में ही हमारे देश का कल्याण निहित है। हमारे लिये सबसे वड़ा काम भारत तथा उसका निर्माण-कार्य है। इसमें हममें से प्रत्येक को अपना हिस्सा अदा करना होगा। जो अपना हिस्सा अदा नहीं करता वह एक अजीब व्यक्ति होगा। राष्ट्रीय प्रगति के इतिहास में पिलानी का क्या स्थान होगा ? मैं जानता हूं इसका स्थान अत्यन्त महत्व का होगा और सच तो यह है कि यह उस ओर प्रयत्नशील है। आपकी उपलब्धियों के कारण निश्चित रूप से भारत जल्दी समृद्ध बनेगा। जयहिन्द।"

पिलानी की इस दूसरी यात्रा में पण्डितजी ने अपनी विनोद प्रियता का भी उस समय वड़ा अच्छा परिचय दिया जव वे घूमघाम कर थके हुए भोजन के लिये गये। खाने से पहले रस पीने के अंग्रेजी चलन के अनुसार उन्हें रस पीने को दिया गया। परोसगार कई थे और दो-तीन जनों ने वारी-वारी से जाकर पण्डितजी को गिलास थमा दिये और वे रस पीते रहे। फिर विड़ला वन्धुओं की हवेली के मैनेजर श्री हरिश्चन्द्र गुप्ता मतीरे (तरवूज) का रस लेकर आ पहुंचे तो पण्डितजी ने मुस्कराकर

कहा, "भई, पिलानी है तो क्या पिलाओ ही पिलाओगे, कुछ खिलाओगे नहीं। अब तो बड़ी तेज भूख लगी है।" जब उन्हें कहा गया कि यह पिलानी की विशेष वस्तु है और उन्हें इसे भी चखना चाहिए तो "अच्छा भाई" कहकर पण्डितजी इसे भी गटागट पी गये और फिर भोजन पर बैठे।

पण्डितजी ने मांटेसरी स्कूल में बच्चों की कला प्रदर्शनी देखी और उसकी बड़ी सराहना की; कालेज के सफल विद्यार्थियों को पुरस्कार वितरित किए और अपने भाषण में उन्हें कहा कि भारत के भावी राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री उन्हीं की पंक्तियों में से निकलेंगे। गरीबी मिटाने और लोगों को ऊंचा उठाने पर उन्होंने विशेष बल दिया था।

फरवरी, १९६१ में जवाहरलालजी तीसरी और अन्तिम बार पिलानी आये। अवसर था बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट की हीरक जयन्ती। श्रीमती इन्दिरा गांधी भी साथ थीं। विद्यार्थियों के "गार्ड ऑफ आनर" का निरीक्षण और बैण्ड की सलामी लेने के बाद उन्होंने पूरी टुकड़ी को कार्यकुशलता के लिए बधाई दी। नव-निर्मित शारदा पीठ या सरस्वती मन्दिर में पण्डित जी ने काफी समय बिताया। यह अपने प्रकार का एक ही अनुपम मंदिर संसार-प्रसिद्ध खजुराहो की प्रतिकृति है। इसकी बाहरी दीवारें संसार के महान विचारकों, वैज्ञानिकों, अन्वेषकों, साहित्यकारों, भारत के ऋषि-मुनियों, सन्तों-भक्तों तथा अवतारी पुरुषों की प्रतिमाओं से अलंकृत हैं। इस प्रकार यह ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के सार्वभौम रूप का उपासना-गृह है।

इस बार भी पण्डितजी ने पिलानी की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं का अवलोकन और निरीक्षण किया और इंजीनियरिंग कालेज के वर्कशाप में एक संदेश रिकार्ड कराकर कहा कि पिलानी में उन्हें जो कुछ देखने को मिला, उसने उन्हें बहुत प्रभावित किया है। और पिलानी शीघ्र ही देश में शिक्षा और ज्ञान का एक महान् केन्द्र बन जाएगा।

पिलानी के सेन्ट्रल म्यूजियम ने भी जिसमें प्रदर्शित अधिकांश माडल स्थानीय वर्कशाप में ही बनाये गये थे, पण्डितजी को बहुत प्रभावित किया

और उन्होंने शिक्षण केन्द्रों के साथ ऐसे अजायबघर रखने के विचार को बड़ा सराहनीय बताया।

बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट के हीरक जयन्ती समारोह का समारंभ करते हुए नेहरूजी ने कहा कि पिछले सात-आठ सालों में इस स्थान में अपूर्व उन्नति की है। पिलानी को देखकर उनके सामने उस पुनर्जाग्रत भारत का चित्र आ जाता है जिसकी जड़ें अपने महान् प्राचीन काल में हैं, किन्तु जो आज की तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है।

पण्डितजी ने कहा कि देश की प्रगति के लिये शिक्षा बहुत आवश्यक है और पिलानी में जो नई संस्थायें खड़ी हो रही हैं, उनके द्वारा अच्छी शिक्षा की मजबूत जड़ें जमाई जा रही हैं। यहां के विद्यार्थियों को ऐसी ऊंची शिक्षा प्राप्त करने का जो अवसर मिला है, भारत के अन्य छात्रों को नहीं मिल रहा है।

पिलानी की तरह वनस्थली बालिका विद्यापीठ भी तीन बार पण्डित जवाहरलाल नेहरू के आगमन और आशीर्वचनों का लाभ उठा चुकी है। यह भी उल्लेखनीय है कि पण्डितजी पहली बार पिलानी गये तब भी भारत के प्रधानमंत्री थे, किन्तु १९४५ ई० में जब वे पहली बार वनस्थली आये तो प्रधान मंत्री तो नहीं, कोटि-कोटि भारतीय जनता के हृदय-सम्राट और लोकनेता अवश्य थे।

२० अक्टूबर, १९४५ के दिन दिल्ली से रेल में चलकर पण्डितजी जयपुर आये थे और मोतीडूंगरी रोड पर लक्ष्मीरामोद्यान[1] में ठहरे थे।

---

[1]लक्ष्मीरामोद्यान जयपुर के भारत-विख्यात आयुर्वेद मार्तण्ड स्वामी लक्ष्मीरामजी का मनोरम बाग है। यह उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय स्वामी लक्ष्मीराम देश के मूर्धन्य चिकित्सकों में से थे जिन्हें पण्डित मोतीलाल नेहरू को उनकी मृत्यु से पूर्व रुग्णावस्था में देखने के लिए इलाहाबाद बुलाया गया था। किन्तु, जब स्वामीजी ने उन्हें देखा तो "उनकी रुग्णावस्था उस स्थिति में पहुंच गई थी कि उसका उपचार अशक्य था। स्वामी जी ने इसका बहुत खेद माना था। उनका ध्यान था कि यदि कुछ समय पहिले उन्हें ज्ञात किया जाता तो यथाशक्य उपाय किया जाता। (श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी का जीवन चरित्र)

वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक और जयपुर राज्य प्रजामण्डल के नेता पण्डित हीरालाल शास्त्री उनके बराबर साथ थे। नेहरूजी ने सरकारी मेहमान बनने से इन्कार कर दिया था फिर भी रियासत के अधिकारियों ने उनकी आवभगत में कुछ भी उठा नहीं रखा।

जयपुर में तब प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल के प्रयत्न से पी० ई० एन० कान्फ्रेंस हुई थी। पण्डितजी ने इसमें पूरे उत्साह से भाग लिया और भाषण भी दिया। महाराजा जयपुर की गार्डन पार्टी तथा सर मिर्जा इस्माइल के डिनर में भी वे गये। महाराजा ने उनके साथ परिचित होने में गर्व अनुभव किया और कुछ बातचीत भी की। एक लाख की आम सभा में पण्डितजी का भाषण हुआ और जयपुर राज्य प्रजामण्डल के सभापति श्री लादूराम जोशी ने उन्हें ३१,००० रुपये की थैली भेंट की। २१ अक्टूबर को राज्य के वित्त और शिक्षामंत्री, राजा अमरनाथ अटल, के यहां भोजन करने के बाद वे शास्त्रीजी के साथ रात को वनस्थली पहुंचे। काश्मीर के शेख अब्दुला भी उनके साथ थे।

वनस्थली में पण्डितजी का कार्यक्रम बड़ी सुन्दरता के साथ निभ गया।[1] जो कुछ देखा और सुना, उससे बड़े प्रभावित हुए और सभा में भाषण देने खड़े हुए तो ऐसे बोले जैसे वही बोल सकते थे। कहा : "काश, मैं भी एक छोटी-सी लड़की होता तो मुझे भी वनस्थली में शिक्षा पाने का अवसर मिलता।"

पण्डितजी दूसरी बार २ फरवरी, १९५८ को वनस्थली आये। श्रीमती-इन्दिरा गांधी भी साथ थीं और दिल्ली से हवाई जहाज में सीधे वनस्थली ही पहुंचे थे। वहाँ शिक्षा कुटीर के द्वार पर स्वागत के बाद कला मन्दिर और प्रदर्शनी को उन्होंने देखा और बालिकाओं के हाथ से बना भोजन किया। पण्डितजी को सुनने के लिये कोई तीस हजार व्यक्ति तब वनस्थली में जमा हुए थे।

---

[1]प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, हीरालाल शास्त्री, पृष्ठ २४२.

वनस्थली में तीसरी बार ५ नवम्बर, १९६३ को पण्डितजी आये और वहां अन्तर्राष्ट्रीय भवन का शिलान्यास किया। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष डी० संजीवैया, कुमारी पद्मजा नायडू और श्रीमती इन्दिरा-गांधी नेहरूजी के साथ थे।

जवाहरलालजी ने वनस्थली को "अद्वितीय संस्था" और यहां के काम को राष्ट्रीय महत्व का तथा राष्ट्रीय एकीकरण में सहायता देने वाला बताया था। इसी का आगे चलकर यह परिणाम हुआ कि वनस्थली विद्यापीठ को पहला सरकारी अनुदान भारत सरकार से ही प्राप्त हुआ। इसकी चर्चा करते हुए पण्डित हीरालाल शास्त्री ने लिखा है :

"जवाहरलालजी ने एक दिन मुझसे पूछा—वनस्थली का खर्चा कैसे चलता है ? मैंने कहा रुपया मांग लाते हैं। उन्होंने सवाल किया "सरकारी मदद क्यों नहीं ली ? मैंने कहा, किस सरकार से लेते और कैसे लेते ? वे बोले—अब तो सरकार अपनी है। नतीजा यह आया कि वनस्थली को सबसे पहले सरकारी ग्रांट भारत सरकार से मिली। बाद में जयपुर सरकार से मिली। एकीकरण के बाद से राजस्थान सरकार से मिलने लगी।...आज राजस्थान सहित १७ राज्यों, १० केन्द्र प्रशासित प्रदेशों और नेफा से, भारत सरकार से, यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन से और नेपाल सरकार से वनस्थली को सहायता मिलती है।[1]

जवाहरलालजी ने १९४५ ई० की अपनी राजस्थान यात्रा को "स्वराज्य यात्रा" बताया था। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में बन्दी बनकर लम्बी जेल-यात्रा के बाद उन्होंने यह यात्रा राजस्थान के पूर्वी द्वार अलवर से आरंभ की थी। अलवर में उन्हें एक हजार रुपये की थैली भेंट करते हुए यह कहा गया कि यहां से राजपूताना आरंभ होता है। इस पर नेहरूजी ने अपने भाषण में कहा था कि राजपूताना और भारत अलग-अलग नहीं हैं। जो कुछ भारत में होगा, उसका प्रभाव राजपूताना पर भी पड़ेगा।

---

1 प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, हीरालाल शास्त्री, पृष्ठ ६२.

हम स्वतंत्रता के मन्दिर के वहुत निकट पहुंच गये हैं, परन्तु अभी हमें वहुत-कुछ करना है।

अलवर से जयपुर और वनस्थली की यात्रा के वाद पण्डितजी व्यावर और पाली भी गये। इन दोनों ही स्थानों पर सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में कम्यूनिस्टों की भूमिका की कड़ी आलोचना की थी।

पाली से जोधपुर पहुंचने पर भी पण्डितजी का वड़ी धूमधाम से स्वागत-अभिनन्दन किया गया था। एक विशाल सार्वजनिक सभा में उन्होंने राजस्थान के रंगों और प्राचीन राजपूती वीरता एवं शौर्य की मुक्तकण्ठ से सराहना की थी। साथ ही, उन्होंने लोगों को चेतावनी दी थी कि केवल उन पुरानी वातों को याद करने से ही आज की ज्वलंत समस्यायें हल होने वाली नहीं हैं। "राजपूताना में आज शूरवीरता तो रही नहीं और उसकी जगह गरीवी का वोलवाला है।" उन्होंने यह कटु सत्य कहा था।

पण्डितजी ने यह भी कहा था कि उनकी यात्रा "स्वराज्य यात्रा" है और उसका अन्त वहुत निकट है—मंजिल की आखिरी सीढ़ी साफ दिखाई दे रही है।'

वात वहुत सच थी—१९४५ से १९४७ दूर ही कितना रह गया था? जोधपुर में पण्डितजी के आगमन पर जो कुछ हुआ, उस समय के रियासती माहौल में कल्पनातीत था। यह कहना कठिन था कि वे मारवाड़ लोक परिषद के मेहमान थे अथवा रियासत के। जोधपुर स्टेशन पर पहुंचते ही राज्य की तीन शानदार गाड़ियां उनकी हाजरी में थीं। और, यह गाड़ियां भी वे खास गाड़ियां थीं जो वायसराय आदि के लिए वाहर निकाली जाती थीं और जिनमें महाराजा भी दशहरा आदि विशेष अवसरों पर ही सवार होते थे।

जोधपुर रियासत ने तव वहुत चाहा था कि पण्डितजी उसी के मेहमान वनते। मिनिस्टरों में भी उन्हें ठहराने के लिए होड़-सी लग गई थी। कइयों ने उन्हें चाय पर आमंत्रित किया और वे गये भी। महराजा उम्मेद-

सिंह ने तो उनके सम्मान में दावत दी। कालेज और छात्र संघ के समा-
रोहों में राज्य के शिक्षा मंत्री और उच्चाधिकारी भी उपस्थित थे। उनके
आगमन के उपलक्ष में राज्य ने सार्वजनिक अवकाश की घोपणा भी की
थी।

जोधपुर की जनता यह सव देखकर स्तब्ध थी। छह माह पहले ही
मारवाड़ लोक परिषद के नेता जेल के सीखचों में वंद थे। अकस्मात् ही
इस दृश्य-परिवर्तन को लोग आंखें फाड़-फाड़ कर देख रहे थे। इस परि-
वर्तन के पीछे स्वराज्य की जो हवा चल रही थी, वह देशी रियासतों में
तब तक भी शायद पूरी तरह नहीं पहुंच पाई थी, लेकिन समझदार राजा-
महाराजा और जयपुर में सर मिर्जा इस्माइल, वीकानेर में सरदार पणि-
क्कर और उदयपुर में ही विजयराघवाचार्य जैसे उनके दूरदर्शी मंत्री इससे
अनभिज्ञ नहीं थे।

जोधपुर के प्रजा-प्रिय राजा उम्मेदसिंह भी हवा के रुख को पहचान
रहे थे। नेहरूजी के दिल्ली प्रस्थान करने के पूर्व वे स्वयं उस स्थान पर
आये जहां भारत का यह सर्वप्रिय नेता और भावी प्रधान मंत्री ठहरा हुआ
था। विदा करने के पूर्व महाराजा ने अपने हाथ से २५,००० रुपये पण्डितजी
को 'कमला नेहरू कोष' के लिए भेंट किये।[1]

---

[1]प्रभात, हिन्दी साप्ताहिक, जयपुर, नवम्बर ५, १९४५.

१४. जवाहरलाल नेहरू : कुछ स्मृतियां

जवाहरलाल नेहरू ने वह दृष्टि पाई थी जो प्रत्येक सुन्दरता की पहिचान कर लेती थी और ऐसा भावुक हृदय जो जी भर उसकी सराहना करने में भी नहीं चूकता था। जिन्दगी उनके लिए सचमुच जिन्दादिली का नाम था। राजस्थान की राजधानी, गुलावी नगरी जयपुर के वे प्रशंसक थे इसलिये कि जयपुर मौलिक रूप से सुन्दर है और वैज्ञानिक आधार पर वसाया गया है और इस शहर ने भारतीय इतिहास के अंधकारपूर्ण काल में वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन की भारतीय परम्परा को भी सुरक्षित रखा था।

वहुत लोग जानते होगे कि कुछ वर्षों पहले सुधार और आधुनिकीकरण के नाम पर जयपुर शहर के दरवाजों को तोड़ने की तजवीज चली थी। जयपुर के स्वर्गीय महाराजा सवाई मानसिंह ने नेहरू जी से मिलकर इस योजना का विरोध किया था और सवाई जयसिंह द्वारा वसाये गये इस नगर को एक संरक्षित राष्ट्रीय स्मारक के समान वनाये रखने का विशेष अनुरोध किया था। जवाहरलाल नेहरू शायद महाराजा मानसिंह से भी अधिक इस वात के कायल थे, और उन्हें यह वताने की आवश्यकता नहीं थी कि जयपुर का क्या ऐतिहासिक महत्व है। उन्होंने राजस्थान सरकार को तुरन्त लिखकर ताकीद की देश-विदेश के पर्यटकों के आकर्षण और नगर रचना के आदर्श रूप इस शहर के स्थापत्य-सौन्दर्य और सभी प्राचीन विशेषताओं को अक्षुण्ण रखा जाय।

जव देश आजादी की लड़ाई लड़ रहा था तव भी जवाहरलाल नेहरू

कई बार राजस्थान आये थे, किन्तु प्रधान मंत्री बन जाने के बाद यह सिलसिला और बढ़ गया। राजस्थान के जन-जीवन में रंगों की भरमार है और उसे देखकर वे बड़े आल्हादित होते थे। वे जब भी जयपुर आते, प्रायः रामनिवास बाग में एलबर्ट हाल की आलीशान इमारत के झरोखे से विशाल जन-समुदाय को सम्बोधित करते। ठीक सामने गणेशगढ़ और नाहरगढ़ की पहाड़ियों के नीचे बसा जयपुर का चित्रोपम नगर जैसे तस्वीर की तरह उनके सामने आ जाता और वे भाव-विभोर होकर कहते "आप लोग इस देर रात तक बहुत दूर तक मुझे सुनने के लिए जमा हैं…यह नजारा मुझे बहुत दिनों तक याद रहेगा।"

जवाहरलालजी उत्साह और उमंग से लहराते जन-सागर से प्रेरणा लिया करते थे और शक्ति भी। फिर जयपुर में यह जन-सागर जैसे सुरम्य वातावरण और जैसे सुन्दर पास-पड़ोस में जमा होता था, वह सचमुच एक नजारा ही होता था जिसे देखकर पण्डितजी का भावुक मन बाग-बाग हो जाता था।

१९५४ के ३० मार्च को जब राजस्थान की स्थापना की पांचवीं वर्ष-गांठ मनाई गई तो जयपुर में बड़ी धूमधाम के साथ अनेक समारोहों का आयोजन किया गया था। शाम को रामनिवास बाग में सार्वजनिक सभा थी और फूलों से सजे एलबर्ट हाल के झरोखे में प्रधानमंत्री विशाल जन-समूह के सामने भाषण देने के लिये पधारे थे। राजस्थान को बने तब पांच ही वर्ष हुये थे और ऐसे बहुत से लोग तब तक मौजूद थे जो रियासती परम्परानुसार रंगीन साफे और पगड़ियां सिर पर बांधते थे। बाग के विस्तृत प्रांगण में उमड़ते हुए जन समुद्र में यह रंग जैसे हिलोरें ले रहे थे और अपने घण्टे भर से अधिक के भाषण को समाप्त करने के पूर्व भारत के उस जबर्दस्त इन्कलाब के नेता और प्रधान मंत्री ने कहा था : "आम लोगों की यह रंग-बिरंगी भीड़ …ये रंग हमारे हिन्दुस्तान में ही हैं और वहां विलायतों में तो रंग के नाम पर काला ही ज्यादा होता है। मैं चाहता हूं कि आप राजस्थान के इन रंगों को कायम रखें।

राजस्थान के लगभग पांच सौ किसानों ने जो १५ नवम्बर, १९५८ से २२ दिसम्बर, १९५८ तक, एक विशेष रेलगाड़ी से भारत-प्रदर्शन यात्रा पर गये थे, नई दिल्ली के तीनमूर्ति भवन में प्रधान मंत्री को राजस्थान के रंगों से सरावोर कर दिया था। किसानों के इस दल में सत्तर महिलायें भी थीं। नाचते-गाते किसानों के सामने जव प्रधान मंत्री आये तो वे बड़ी प्रफुल्ल मुद्रा में थे। किसानों के ७०-वर्षीय नेता जैसाजी ने अपने हाथ से राजस्थान का चूंदड़ी का साफा प्रधान मंत्री के सिर पर वंधवाया और यह 'पहरावणी' चली तव तक राजस्थानी कृषक कुलांगनायें 'वधावे' गाती रहीं। लोक-प्रतिनिधियों के वीच लोकनेता का रोम-रोम थिरक उठा। कृषक-नेता जैसाजी के हाथों से उन्होंने मारवाड़ के मतीरे और रेगिस्तान की सुखाई हुई सब्जियों—सांगरी, कैर, कुमठिया और काचरी आदि का उपहार भी सहर्ष स्वीकार कर प्रधान मंत्री निवास की विशाल कोठी में भेज दिया। उस अविस्मरणीय अवसर पर जितने भी राजस्थानी किसान वहां उपस्थित थे, क्या कभी उन क्षणों को भूल सकते हैं !

जयपुर के सफल किसान श्री भंवरलाल गोलीमार ने उन क्षणों को लोक-भाषा में इस प्रकार काव्यवद्ध किया है :—

पण्डितजी के भवन वाग में सभी यात्री पहुंचे जाय।
एक राजस्थानी साफा सिर पर नेहरूजी के दिया वंधाय॥
वंधा शीश पर साफा नेहरू मिलिया आप भुजा पसार।
इतनी खुशी हुई सवलाँ कै मानो विन भोजन आयो आधार॥
वुला भवन में पंडित नेहरू सव भायाँ को राख्यो मान।
जुग-जुग जीओ पंडित नेहरू जव तक है धरती-असमान॥

जैसाजी को सचमुच वाथ भरकर और गले लगाकर ही प्रधानमंत्री ने इस किसान दल को विदाई दी थी। किसान जवाहरलाल जी के हृदय के कितना निकट था, यह कहने की आवश्यकता नहीं। अपनी आधी सदी लम्बी जनसेवा आरम्भ करने के पूर्व हिन्दुस्तान के नंगे-भूखे किसान ने ही पण्डित मोतीलाल नेहरू के नाजों से पले लाड़ले को आजादी की लड़ाई

में कूद पड़ने के लिए बेताब बना दिया था।

हमेशा गुलाब की तरह खिले रहने और महकने वाले जवाहरलाल नेहरू नवम्बर, १९६३ में जब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में भाग लेने के लिए आखिरी बार जयपुर आये थे तो रामनिवास बाग में फिर सभा हुई और उसमें जयपुर वालों ने पहली बार यह अनुभव किया था कि भारत के कोटि-कोटि जन को आजादी दिलाने और उनके लिए सुख समृद्धि का मार्ग खोलने के लिए अपना पूरे पचास साल आराम हराम कर देने वाले जवाहरलाल में जवानों को भी मात देने वाली चुस्ती अचानक ही गायब हो गई है और वे बहुत थक गये हैं। विशाल जन-समुदाय में सबकी नजर एलबर्ट हाल के झरोखे पर टिकी हुई थीं जहाँ मुख्य मन्त्री मोहनलाल सुखाड़िया के बार-बार सहारा देने के बावजूद भाषण देने की मुद्रा में अपने-आपको जमाने में जवाहरलाल जी को कुछ मिनट लग गये थे और भाषण आरम्भ करने के पूर्व माइक में उनकी आवाज सुनाई दी थी कि "अभी तक मैं जमा नहीं।" इस सीधी-सच्ची बात पर भीड़ में हंसी भी फूट पड़ी थी किन्तु संजीदा लोग देख और समझ रहे थे कि भारत-माता के इस अनन्य सेवक की आयु अब अपनी तासीर दिखाने लगी है।

इस जयपुर प्रवास में जवाहरलाल जी ने राजस्थान के सबसे बड़े क्रीड़ांगण, सवाई मानसिंह स्टेडियम का शिलान्यास किया जिसके लिए जयपुर के भुतपूर्व महाराजा मानसिंह ने लगभग ९० एकड़ भूमि प्रदान की थी। थोड़ी-सी देर के लिए वे पुराना घाट स्थित सीसोदिनी महारानी के बाग में भी गये और नैसर्गिक सौन्दर्य से परिपूर्ण इस सीढ़ीदार उद्यान और महल की छटा पर मोहित हो गये । इस सुरम्य निवास-स्थल को और भी रमणीय बनाने के लिए भारत सरकार की ओर से पाँच लाख रुपये की तत्काल मंजूरी दी गई। खूबसूरती को परखने वाली ऐसी नजर नेहरूजी ने पाई थी।

जवाहरलालजी के विज्ञान-प्रेम और रचनात्मक प्रवृत्तियों की ओर राजनीतिक तथा सनसनीखेज बातों में ही डूबे रहने वाले अखबारों की

और उदासीनता का एक दिलचस्प उदाहरण इसी अक्तूबर का
दिसम्बर, १९६३ को जयपुर में ही एक "इन्टरनेशनल कांफ्रेंस ऑन
क रेन्ज" हुई थी जिसका उद्घाटन करने वह फिर यहाँ आये थे।
नेलन को जिसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व था, अखबारों ने वैसी मह-
नहीं दी जैसी देनी चाहिए थी। जयपुर से आगरा पहुँचकर अखबारों
ने के बाद प्रधान मंत्री यह शिकायत करने से नहीं चूके। वह खुश
ी बात पर तुरन्त खुश और नाराज होने की बात पर फौरन नाराज
ते थे।

सके कोई डेढ़ माह बाद भुवनेश्वर की कांग्रेस में वे सचमुच बीमार
े पर उस धक्के से संभल कर ऐसे स्वस्थ हो गये थे कि कुछ दिनों से
लिये किसी को ऐसी चिन्ता नहीं रही थी। दिल्ली के संवाददाताओं
क बार उन्होंने स्वयं कहा था कि उनकी उम्र इतनी जल्दी कहाँ खत्म
ाली है!

शायद २५ मई, १९६४ की शाम को वे तीन दिन देहरादून में आराम
के बाद तरोताजा होकर दिल्ली लौटे पर तब कौन जानता था कि
संसार में यह उनकी आखिरी रात होगी। २७ मई को सवेरे ही उन्हें
का दौरा पड़ा और फिर जो तबीयत गिरी तो गिरती ही चली गई।
बजे के आसपास तो जयपुर और सारे राजस्थान में हवा की तरह वह
न समाचार फैल गया जिसे सुनने के लिये यह देश, यह प्रदेश और
ुर शहर कोई भी तैयार नहीं था।

रेडियो से पुष्टि होनी थी कि सारे राजस्थान में उसके रंगों के प्रेमी
ान्तता के नायक और प्रगति एवं विकास के उन्नायक के चले जाने का
ा और शोक छा गया। सिविल लाइन्स के अपने बंगलों और डाक
लों में मिनिस्टर रोये, दफ्तरों में अफसरों और बाबुओं ने आँसू बहाये,
रखानों और फैक्ट्रियों में मजदूर सुबक पड़े और सबसे ज्यादा फूट-फूट
े वे नन्हे-मुन्ने जिन्होंने अपना प्यारा चाचा खो दिया था।

यों सभी गमगीन हुये तो प्रकृति से भी न रहा गया। ऐसी आँधी चली

और तूफान आया कि एक-एक पेड़, एक-एक पौधा पछाड़ खा-खा कर गिरा, सिर धुन-धुन कर रोया। आसमान भी जी भर रोया, सारी जमीन आँसुओं से तर हो गई। बड़ी मनहूस, बड़ी बदकिस्मत शाम थी वह। राजस्थान के रंग जैसे धुले जा रहे थे।

सारी जिन्दगी हिन्दुस्तान और उसकी एक-एक चीज को बेतहाशा प्यार करने वाले जवाहर लाल नेहरू ने अपनी यह अन्तिम इच्छा प्रकट की थी कि उनकी भस्म को सारे देश में खेत-खलिहानों पर छितरा दिया जाय और कुछ गंगा में प्रवाहित कर दी जाय। राजस्थान को भी इस भस्म का हिस्सा मिला और २ जून को सवेरे ही भस्म से भरा एक पात्र जयपुर आ पहुंचा। रामनिवास बाग में एलबर्ट हाल के बरामदे में पाँच दिन तक जयपुर के नगरवासियों ने अपने प्रिय नेता के अवशेष पर श्रद्धा के फूल चढ़ाये।

इसी स्थान पर कितनी ही बार जयपुर वालों ने जवाहरलाल नेहरू की जिन्दगी और जिन्दा दिली के नजारे देखे थे। उनका बोलना, हंसना, मुस्कराना, खीझना, डाँटना-फटकारना—सभी मूड यहाँ देखने में आये थे, पिछले पन्द्रह वर्षों में। एलबर्ट हाल पर जैसे उन्हें देखने और उनका भाषण सुनने के लिये अपार जन-समूह एकत्रित होता था, वैसे ही उनकी भस्म पर फूल चढ़ाने के लिये स्त्री-पुरुषों और बच्चों का ताँता बंधा रहा। इसके बाद यह भस्म पुष्कर ले जाई गई और वहाँ के पवित्र सरोवर में प्रवाहित कर दी गई।

राजस्थान की सरकार ने जवाहरलाल नेहरू की स्मृति में दस लाख की लागत से राज्य भर में ७५ बालोद्यान बनवाये। म्यूजियम या एलबर्ट हाल के पीछे से दुर्गापुरा तक जाने वाली सड़क को जो अन्ततः सांगानेर के हवाई अड्डे तक जायेगी, जवाहरलाल नेहरू मार्ग का नाम दिया गया है। आगे वाले सालों में यह सड़क जयपुर की सबसे खुशनुमा सड़क होगी। इस पर राजस्थान विश्वविद्यालय की शानदार इमारतें तो हैं ही, पुलिस-स्मारक भी है जिसका अनावरण १९६३ में नेहरूजी ने ही किया था।

१९४८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन भी वहीं हुआ था जहाँ अब विश्वविद्यालय है। १९६३ में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन का स्थल मेडिकल कालेज का मैदान था और वह भी इसी सड़क पर है। एलबर्ट हाल के साथ तो जवाहरलालजी की अनेक यादें जुड़ी हैं ही।

इस प्रकार जवाहरलाल नेहरू की कई स्मृतियाँ इस सड़क के ओर-छोर तक फैली हैं। जयपुर में यह सचमुच जवाहरलाल नेहरू मार्ग ही है।

१५. ससुराल और ननिहाल

राजस्थान के साथ नेहरू परिवार के प्रगाढ़ सम्बन्धों का एक पक्ष प्राय: अनजाना-सा है, किन्तु वही सबसे घनिष्ठ, भावात्मक और पारिवारिक पक्ष है। राजस्थान की राजधानी, जयपुर का गुलाबी नगर पण्डित जवाहरलाल नेहरू की ससुराल, श्रीमती कमला नेहरू का मायका और इसी नाते प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी का ननिहाल है। इन रिश्तों का ताना-बाना बड़ा दिलचस्प है।

इस पुस्तक के आरंभ में ही यह दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया था कि अंग्रेजी राज की स्थापना के अनन्तर किस प्रकार राजस्थान के बाहर के अंग्रेजी शिक्षित लोगों की रियासतों और रजवाड़ों में मांग रहने लगी थी। पण्डित नन्दलाल नेहरू इसी प्रकार खेतड़ी पहुंचे थे। जयपुर तो राजस्थान की सबसे समृद्ध रियासत थी और यहां के राजाओं ने जयपुर बसने के समय से ही बाहर के अच्छे-अच्छे विद्वानों, गुणीजनों और योग्य व्यक्तियों को लाकर बसाने की परम्परा अपनायी थी। योग्यता और किसी गुण की विशेपता ही इसका एकमात्र मापदण्ड रहता था, अन्यथा कोई किसी भी जाति, धर्म अथवा प्रदेश का हो, जयपुर में उसे सादर प्रतिष्ठित किया जाता था। एक सदी से भी पहले पण्डित मोतीलाल अटल का कश्मीरी परिवार भी बड़े मान-सम्मान पूर्वक जयपुर में बसाया गया था और महाराजा रामसिंह ने पण्डित मोतीलाल को दीवान के उच्च पद पर नियुक्त किया था। महाराजा रामसिंह की मृत्यु के समय ईसरदा के कायमसिंह को माधोसिंह द्वितीय के नाम से उनका

उत्तराधिकारी वनाने में इन अटलजी का वड़ा हाथ रहा था।

पण्डित मोतीलाल अटल के तीन पुत्र हुये—किशनलाल, श्याम-नारायण और जयनाथ। पण्डित किशनलाल अटल महाराजा रामसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। जयपुर के अतिरिक्त उन्होंने जोधपुर और रींवा दरवार की भी उल्लेखनीय सेवायें की थीं। जोधपुर दरवार से भी उन्हें एक हजार रुपये माहवार मिलते थे और रींवा के महाराजा ने भी उन्हें वड़ी इनामें दी थीं।

जयपुर में रहते हुये पण्डित किशनलाल ने मान-प्रतिष्ठा और रुपया, दोनों ही कमाये। उनके सात पुत्र और एक पुत्री की वंश-वेल फैली और इस वड़े परिवार के लिहाज से उन्होंने सेवा-निवृत्त होने के वाद दिल्ली के वाजार सीताराम में एक वड़ा मकान खरीदा। जयपुर से उनका चित्त अन्तिम दिनों में उचट गया था। उनका एक पुत्र, प्यारेलाल भरी जवानी में मर गया था। प्यारेलाल ने अपनी आरंभिक शिक्षा जयपुर के महाराजा कालेजिएट स्कूल में पाई थी। वाद में वह लाहौर के मेडिकल कालेज में पढ़कर डॉक्टर वना और १८९९ ई० में इण्डियन मेडिकल सर्विस में आया। १९०३ ई० में वह ड्यूक ऑफ कनाट की वलूच रेजीमेंट के साथ चीन की लड़ाई में गया और मेजर वना। २३ नवम्वर' १९१४ को जव प्रथम महायुद्ध में वह फ्रांस में लड़ाई के मैदान में घायलों की सेवा-सुश्रुषा कर रहा था तो उसके एक गोली आकर लगी और वह वहीं चल वसा। मेजर प्यारेलाल का नाम फील्ड मार्शल सर जान फ्रेंच ने अपने 'डिस्पेच' में दिया और स्वयं ब्रिटिश सम्राट ने उनके पिता को संवेदना संदेश भेजा। वाद में महाराजा माधोसिंह के आदेश से महाराजा कालेज के चौक में एक दीवार पर संगमरमर का एक स्मारक फलक भी लगवाया गया। इस फलक में कहा गया है कि मेजर अटल की कर्त्तव्य-परायणता सव देश-वासियों के लिये आदर्श वनी रहेगी।

प्यारेलाल पण्डित किशनलाल अटल के छठे पुत्र थे और उनसे वड़े थे जवाहरमल जिनको उन्होंने अपनी धनवान वहन को गोद दे दिया था।

जवाहरमल के इस प्रकार दत्तक हो जाने से उनका पौत्र अटल से बदल कर कौल हो गया। यह दत्तक नाम मात्र का ही था, क्योंकि जवाहरमल शायद कुछ दिन रहकर ही अपने पिता के घर लौट आये और बाजार सीताराम के अटल हाउस में ही रहे।

इन्हीं जवाहरमल की पत्नी श्रीमती राजपति के गर्भ से पहली अगस्त, १८९९ को कमला नेहरू का जन्म हुआ जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने इकलौते पुत्र जवाहरलाल के लिये चुना। ८ फरवरी, १९१६ की वसन्त पंचमी के दिन दिल्ली के अटल हाउस में ही बड़ी धूमधाम और शान-शौकत के साथ जवाहर और कमला का यह विवाह सम्पन्न हुआ।

किशनलाल तो दिल्ली चले गये थे, किन्तु पण्डित मोतीलाल अटल के अन्य दो पुत्र श्याम नारायण और जयनाथ जयपुर में ही थे और कमला अपने बचपन में कई बार चौड़े रास्ते स्थित पण्डित मोतीलाल अटल की हवेली[1] में अपने पिता के चाचा दीवान जयनाथ अटल के परिवार के साथ रही थी। यहां रियासती तौर-तरीके के अनुसार अटलजी की हवेली में महिलायें कड़े पर्दे में रहती थीं और कमला से भी भीतर ही रहने को कहा जाता था, किन्तु दस वर्ष की कमला का भीतर दम घुटता था। वह अपने भाइयों के कपड़े पहनकर बाहर आ जाती और खुले चौक में उनके साथ खेलती।[2]

कमला भुवनमोहिनी कन्या थी और पण्डित मोतीलाल ने जब उन्हें जवाहरलाल के लिए चुना तो एक बड़ी बाधा उपस्थित हुई थी। यह बाधा यह थी कि नेहरू परिवार का गोत्र कौल है और जवाहरमल जी भी अटल से कौल बन गए थे। तो क्या कौल-कौल से ही विवाह कर लेगा? प्रश्न तो जटिल था, किन्तु समाधान बड़ा ही सरल निकल आया। यह तय किया गया कि कमला का कन्यादान जवाहरमलजी नहीं करेंगे उनके बड़े भाई अर्जुननाथजी करेंगे। बस, अर्जुननाथजी अटल ने ही कन्यादान किया और

---

१. यह अब धामाणी मार्केट कहलाती है।
२. कमला नेहरू : प्रोमीला कल्हन, पृष्ठ ३

कमला जवाहरलाल नेहरू की अर्द्धांगिनी वन गई।

श्रीमती कमला नेहरू की छोटी वहिन स्वरूप डाक्टर पी० एन० काटजू को व्याही गई और काटजू दम्पति आज भी जयपुर के ही निवासी हैं। काटजू साहव का कहना है कि अपने श्वसुर जवाहरमल जी से अधिक सुन्दर पुरुष उन्होंने कश्मीरियों में दूसरा नहीं देखा। ऐसे सुन्दर पिता की सन्तान कमला रूपवती क्यों न होती ?

श्रीमती कमला नेहरू के पिता पक्ष का अटल परिवार आज भी जयपुर में स्टेशन रोड पर अटलजी के वाग में रहता है। पण्डित जयनाथ अटल तो जवाहरमल के चाचा ही थे और दीवान रहे थे। उनके पुत्र पण्डित राजा अमरनाथ अटल जयपुर रियासत के वित्त एवं शिक्षा मंत्री रहे और पौत्र श्री जे० के० अटल दो वर्ष पूर्व ही भारतीय विदेश सेवा से निवृत्त हुये हैं। पिछले भारत-पाक युद्ध के दौरान वे पाकिस्तान में उच्चायुक्त थे।

राजस्थान की कहावत है : "मरो मां और जियो मांवसी ?" इन्दिरा जी की माता कमलाजी तो कभी की भगवान को प्यारी हुईं, किन्तु मौसी श्रीमती स्वरूप काटजू यहां जयपुर में ही विद्यमान हैं। अपने मौसा-मौसी और ननिहाल के मूल घर, अटल परिवार के साथ इन्दिराजी का सम्बन्ध और सम्पर्क वैसा ही है जैसा होना चाहिये।

१९६६ में जव अ० भा० कांग्रेस समिति का अधिवेशन जयपुर में फिर हुआ था तो प्रधान मंत्री वनने के वाद इन्दिराजी पहली वार जयपुर आई थीं। अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर वे तव अपनी मौसी से मिलने और अटल परिवार के साथ भोजन करने अवश्य पहुंच गई थीं।

श्रीमती इन्दिरा गांधी जयपुर में कुछ दिन रही भी हैं। यह १९४३ का साल था जव इन्दिराजी जेल से रिहा हुई थी। उनके मौसा-मौसी काटजू दम्पति तव जयपुर में थे। जेल से रिहा होते ही वे उनके पास आईं और १५ दिन यहां रहीं। काटजू साहव तव जयपुर क्लव के पास दो नम्वर के वंगले में रहते थे। उस वीच इन्दिराजी ने जयपुर शहर को

अच्छी तरह देखा। उन्हीं दिनों वे वनस्थली भी गईं।

जयपुर शहर में उन दिनों मोटरकारों का इतना बाहुल्य नहीं था। काटजू साहब उद्योग विभाग के डाइरेक्टर जरूर थे, परन्तु जेल से छूटकर आई हुई अंग्रेज विरोधी राजनेता के लिए सरकारी कार वे भी जुटा नहीं सकते थे। वे चाहते भी नहीं थे। सेठ-साहूकारों में भी शायद ही कोई अपनी कार उन्हें देता। प्रजामण्डल के नेताओं का तब जो राजनीतिक आचरण था, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। उन्हें दुविधा में डालना ठीक नहीं होता। वनस्थली जाने के लिये सिर्फ बस का ही सहारा लिया जा सकता था।[1] पैट्रोल की कमी के कारण उन दिनों बसें भी कोयले के गैस-प्लान्ट से चलती थीं। इसी तरह की एक बस में काटजू साहब ने इन्दिरा जी और उनकी मौसी को वनस्थली रवाना कर दिया। निवाई तक तो बस सही-सलामत पहुंच गई। लेकिन निवाई के आगे सड़क नहीं थी। कच्चे रास्ते में रात को बस ने जवाब दे दिया और नौबत यह आ गई कि इन्दिराजी और उनकी मौसी जी को रात का वक्त जंगल में ही रेत में सोकर काटना पड़ा। सुबह होने पर वनस्थली को किसी से सन्देश पहुंचाया गया और वहां से सवारी आई तो इन माननीय अतिथियों को वहां ले जाया गया। इस कठिन यात्रा में कोयले की गैस, धुओं और धूल से इन्दिराजी का गला खराब हो गया और उन्हें एकाध दिन बोलने में भी कठिनाई हुई।

इस बीच प्रधान मंत्री, सर मिर्जा इस्माइल को खबर हो गई कि श्रीमती इन्दिरा गांधी जयपुर आई हुई हैं तो उन्हें काटजू दम्पति के साथ भोजन के लिये निमन्त्रित किया और साथ ही काटजू साहब से यह शिकायत करने में भी नहीं चूके कि उन्होंने इन्दिराजी के आगमन की सूचना नहीं दी। सर मिर्जा एक संजीदा, नफीस और व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ थे। अतः वे प्रत्यक्ष में कभी किसी को नाखुश होने का मौका नहीं देते थे और खुश करने का मौका हाथ से नहीं जाने देते थे।

---

१. जयपुर की भानजी (लेख), नन्दकिशोर पारीक, राजस्थान पत्रिका, जयपुर २४ जनवरी, १९७३

सर मिर्जा के साथ भोजन में एक और प्रसंग सामने आ गया। इन्दिरा जी का गला खराब देखकर सर मिर्जा को यह चिन्ता हुई कि उनकी तबियत तो खराब नहीं है। काटजू साहब ने जब उन्हें बताया कि यह वनस्थली यात्रा का प्रसाद था तो सर मिर्जा को यह सुनकर विश्वास नहीं हुआ कि निवाई से वनस्थली तक सड़क बनी हुई नहीं है। उन्होंने खाने की मेज पर से ही पी० डब्ल्यू० डी० के चीफ इंजीनियर सर तेजासिंह मलिक को फोन पर हिदायत दी कि वनस्थली की सड़क तुरन्त बन जाय। सर मिर्जा इस सड़क की मंजूरी पहले ही दे चुके थे और वे यह मान बैठे थे कि सड़क बन भी चुकी है। इन्दिरा गांधी की यात्रा ने इस सड़क को मूर्तरूप दे दिया।

मालूम नहीं, इन्दिराजी को यह सब बातें अब याद हैं या नहीं, लेकिन जयपुर वालों को यह जानकर गर्व है कि उनकी वह भानजी आशु-फलदायिनी है। बहुत सारी यादें तब की हैं जब प्रधान मंत्री होने का तो सवाल ही नहीं था क्योंकि वे आयु में भी बहुत छोटी थीं और उनके पिता भी प्रधान मंत्री नहीं बने थे।

१६. पं० मोतीलाल का खेतड़ी के प्रति स्नेह

स्वर्गीय पं० मोतीलालजी के दर्शन लाभ करने का अवसर महात्मा-गांधी के युगारम्भ के समय कलकत्ते की कांग्रेस के अवसर पर प्राप्त हुआ था। खेतड़ी के नाम पर वे वड़े प्रेम से मिले थे, वड़ी कृपा दिखाई थी। खेतड़ी के वारे में पूछने पर पं० मोतीलालजी ने कहा था "खेतड़ी से हमारे परिवार का सम्बन्ध वहुत पुराना और घनिष्ठ रहा है। मेरा खेतड़ी आना-जाना बना रहा है। जब जब खेतड़ी गया वड़ा सम्मान होता था। खेतड़ी के लिए कानूनी पहलू पर "नोटिस" भी मैंने बनाये थे। खेतड़ी पहाड़ों से घिरी अच्छी जगह है।

राजा अजीतसिंह राजपूताने के पहले नरेश थे जो विलायत गये थे। वहां उनके अनेक मित्रों से मैं भी मिला हूं। उन्होंने मुझे अपने मित्रों के नाम परिचय पत्र दिये थे। दोस्त वनाने की उनमें कला थी। राजा साहब अच्छे खुशरा जवान थे। गठीला शरीर, गोरा रंग, लम्बा कद, चेहरे पर रौव-दौव, चौड़ा सीना और शाही कपड़ों में देखते ही वनते थे। न्यायप्रिय, उदार, प्रजाहितसाधक, शिक्षाप्रचारक, गुणग्राही थे। चालीस वर्ष की छोटी अवस्था में ही स्वर्गवासी हो गये, वरना देश का वड़ा काम करते। स्वामी विवेकानन्द को सर्व धर्म सम्मेलन में अमेरिका भेजने में मदद करके देश का विदेशों में सम्मान वढ़ाया। वेदांत, योगदर्शन, ज्योतिष का वड़ा शौक रखते थे। दो वार इलाहावाद मेरे यहां आये। मेरा खेतड़ी से गहरा लगाव है। मुन्शी जगमोहनलालजी कई दफा इलाहावाद आये थे। राजाजी

के बड़े विश्वस्त सलाहकार थे।"

मोतीलालजी का खेतड़ी के प्रति अनुराग खेतड़ी के कौंसिल सदस्य श्री जगमोहनलाल को लन्दन से लिखे गए दिनांक २२-१०-१८९९ के पत्र से भी प्रकट होता है जो परिशिष्ट ६ के रूप में छपा है। उसमें पण्डितजी ने खेतड़ी में अकाल की चिन्ता की है और सलाह दी है कि "खेतड़ी की अकाल पीड़ित जनता को उन्मुक्त सहायता देकर सरकार की सहानुभूति प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर है। खेतड़ी कोई बहुत बड़ी जगह नहीं है और नाही बहुत घनी आबादी है। राज्य यथाशक्ति अकाल-पीड़ितों को पेशगी दे और उन लोगों को सम्मानित करे जो अकाल पीड़ितों के सहायतार्थ दान दें। आप लोग अकाल पीड़ितों की सेवा करना अपना आदर्श बना लें।"

खेतड़ी के प्रति मोतीलाल जी की आत्मीयता प्रकट करने वाली एक और घटना है अजीतसिंह की अपनी रानी सहित प्रयाग यात्रा की। राजा जी और रानी जी को तो पंडितजी के घर भोजन कराया गया ही। विशेष बात यह थी कि उनके साथ वह धाय भी थी जिसने बचपन में मोतीलाल जी को अपना दूध पिलाया था। पंडितजी और स्वरूप रानी जी की उल्लेखनीय आत्मीयता यह थी कि स्वरूप रानीजी ने उस धाय को सास जैसा सम्मान दिया।

यही नहीं मोतीलालजी का खेतड़ी पर ऐसा विश्वास था कि जवाहर लाल जी का जन्म पत्र पंडितों के नगर प्रयाग में न बनवा कर खेतड़ी में बनवाया गया। उनके लिए घोड़े की जरूरत हुई तो खेतड़ी से ही मंगवाया गया। यहां तक कि पेरिस की नुमाइश के लिए बीनकार, बाजीगर, पहलवान आदि की जरूरत समझी गई तो खेतड़ी को ही याद किया गया।

यह सब होता क्यों नहीं, आखिर मोतीलालजी का बचपन खेतड़ी में ही तो बीता था। और जिस भूमि में पहली समझ आती है वही भूमि मातृ-भूमि सी लगती है।

परिशिष्ट—१

KHETRI,
9th December, 1889.

My dear Panditji,

I am glad to acknowledge the receipt of your two letters and feel very much pleased to learn that you have been blessed with a son. I congratulate you for this.

As for the horoscope, it will be sent to you some time afterwards.

Yours sincerely,
sd/-
(Ajit Singh)

To :
Pandit Motilalji Nehru,
Vakil, High Court,
ALLAHABAD.

परिशिष्ट—२

MOTILAL NEHRU
Advocate, High Court
N.W.P.

Allahabad,
18.3.1900

Dear Munshi Jagmohan Lalji,

... ...

14. Thanks for your kind enquiries. My wife and other members of the family are doing very well. I think you showed me a telegram from H.H. asking certain particulars about a horse for Jawaharlal. I understand now that you said something to Munshi Mubarak Ali which gave him the impression that a suitable horse had been found and was being trained. Please let me know if this is so. Jawahar Lal has nearly forgotten all he learnt of riding and I feel he must have a horse atonce.

15. You must have received my type-written letter about the Exhibition business. It is promising very well indeed. They want more men than I have collected and I have accordingly sent Maharaj Bahadur to Calcutta to engage some acrobats &c. French India has also been included in our business so far as the shows are concerned. I am

told there is a very clever Beenkar (player on the Been) in the employ of H.H. I will be glad if H.H. permits him to go to Paris for a few months. Please obtain H.H.'s permission and send the Beenkar after settling his monthly salary. He will get all expenses besides the salary so settled.

As for Jhoontha, Pahalwan I do not exactly know what his qualifications are but if you think he is passable you may send him here. If not approved, he will be paid his expenses to Allahabad and back.

The male goat which gives milk is no doubt a curiosity but the question is whether he would continue to give milk for any length of time. It may be that before it reaches Paris it ceases to give milk. If you think it will not, you may send it.

The whole party must leave by the steamer which sails from Bombay on the 12th April and I must engage passages as soon as possible. Whatever you have to send, please send atonce. I particularly want the Beenkar. Please tell him that he will be in a company of his own as I have engaged 5 to 6 other musicians who know him very well and at whose suggestion I have written to you for him. I have not yet been able to get a good juggler or conjurer. If there is any one in that part of the country worth sending to Paris, please engage his services.

Please give my respects to His Highness and the Raj Kumar Sahab of Shahpura.

Yours sincerely,
Moti Lal Nehru.

P. S. I dictated this latter on the 17th instant to Mohanlal who has taken all this time to type-write it. Received your letter intimating H.H.'s sanction to the increased contribution to the shares of the Paris business. If the Calcutta Seths send the money, well and good. If not, you need not be anxious. I will manage it. I only wanted H.H.'s sanction, which I have now obtained. I am also very glad indeed to receive H.H.'s telegram which I have just replied. I believe you will be going with H.H. I am directing this to Rewari. Should you not be with H.H., I hope he will open this. Please send Jhoontha Pahalwan and the Binkar without fail. TIme is very short.

Yours sincerely,
Motilal Nehru.

P. P. S. To be on the safe side I address the cover to H. H. at Rewari.

परिशिष्ट—३

Strictly Private &
Confidential

Allahabad
De cr. 22/99.

Dear Pirthi Nath,

I write to you about the *biradri* question on account of the many absurd rumours which have reached me.

The policy which I had intended to adopt and have actually adopted since my return from England was one of complete inobtrusiveness. I came back quietly and joined my family circle without making the least attempt either to invite any opinions or to thrust myself upon others. In the natural course of things all recollection of my visit to Europe and the social disabilities (if any) flowing from it would soon have been forgotten if I had only been left alone. It has however pleased my dear, affectionate, and old friend and admirer Mr. Hirday Narain to make it his special business to annoy me and precipitate matters. He is of course quite at liberty to do so as he is one of those people who rush in where angles fear to tread. My only object in writing to you is to warn you against the recurrence of the same unpleasant state of things which occurred when I was at Cawnpore and lasted for

so many years without the least cause for it. Whatever the issue of Mr. Hirday Narain's efforts to create difficulties may be (and I may tell you that I am fully prepared for every emergency) I wish to goodness that the mutual love and regard which has subsisted between us may not be allowed to suffer. By this I do not wish io influence you in any way in making up your mind one way or the other. You may do so as you please without committing yourself so far as to lose the respect and esteem I have always entertained for you.

As for the question itself, my mind is finally and irrevocably made up. I **will not** (come what may) indulge in the townfoolery of Proschit. No never-even if I die for it. I have been provoked and have been rudely dragged from my seclusion into public notice. But my enemies will find me a very hard nut to crack. I know what your *biradri* is and if necessary in self defence I will ruthlessly and mercilessly lay bare the tottered fabric of its existence and tear it into the minutest possible shreds. I am only waiting for some foeman worthy of my steel to take the field and will then be ready to break a lance with him. If any one thinks that I will be cowed down by impotent threats he is sadly mistaken. So long as Hirday Narain and others of his ilk howl and bark I will pass them by with the most sloted indifference snd contemptuous silence.

I am afraid however the question will be brought to the fore at the ensuing wedding at Cawnpore. I wish to meet you before it comes off and we can then settle what our line of action will be. Before meeting and discussing the situation with me I wish you will not commit yourself to any view. Let me know when you return from Congress and I will go to Cawnpore for a few hours.

Yours sincerely,
Motilal Nehru.

परिशिष्ट—४

S. S. Arabia
Aden in sight.
August, 17, 1899.

Your Highness,

Just a line to inform you that I have survived the terrors of the Arabian sea and am now preparing to go through the horrors of the Red Sea. The monsoon though a weak one, was altogether too much for me. I was very sad for two days and not very well the rest of the voyage from Bombay. I am, therefore, sorry I have not been able to do any work for your Highness. I do feel that the 6 months time we have asked for is a little too much. I think I will be able to send your Highness some substantial production before I get to Marselles provided of course the sea behaves itself properly. In any case if your Highness takes even three months' time or say till the return of the Resident from leave which I understand is two months from the 1st September, it will give us time to settle our reply.

Hoping your Highness is enjoying excellent health.

Yours obediently.
sd/-
(Moti Lal Nehru).

परिशिष्ट–५

WATSON'S
ESPLANADE HOTEL,
Bombay 12.8.1899.

Dear Bishan Narain,

Allow me to introduce to you my friend Munshi Jagmohan Lalji, Member of the Khetri Council. You might have heard of the relations which have subsisted between Khetri and my family for a long time. I have from time to time been doing some work for Khetri and now that I am about to sail for England I must name someone as my substitute during my absence. I have pitched upon you and Durga Charan as two of the fittest persons to do the work, if necessary. Please give your best attention to Munshi Jagmohanlalji and the work he wants you to do.

Yours sincerely,
sd/-
Motilal Nehru.

परिशिष्ट–६

The First Avenue Hotel,
High Holborn,
London W. C. Oct. 22, 1899.

Dear Jagmohanlalji,

I have not received any letter from you for the last two or three mails and have myself been so busy that I could not write. The time for my return is now drawing near and it is for the first time in my life that I feel it is not an unmixed pleasure to return home from a country like England. It is not the pleasures with which this country abounds that makes me regret leaving it but the idea that I have not seen one tenth of what is to be seen in London alone (to say nothing of the other great citles of this small Island) prevents me from feeling that whole-hearted happiness which I would otherwise have felt at the prospect of being once more among my own people. The forces which drew me towards my own native land are however far stronger than my curiosity to see other persons and things and I must yield to these by leaving the shores of England by the end of this month. I am booked via Brinderi by the steamer which leaves that port on the

12th Novr. and I propose passing the interval on the Continent.

By a lucky chance, I managed to meet the Raj Kumar Sahab of Shahpura just when he was about to start on his homeward passage. He did not of course know me but it was easy enough for me to make myself known to him. He is a very amiable prince and I was very glad to make his acquaintance.

I have not been able to catch all the people for whom I had introductions from His Highness as most of them have not returned to town yet, but I have seen a good number of them. Sir G. Seynor Fitzgerald has been of great use to me in getting orders for me to see the House of Lords on the opening day ceremony and other places of interest. Sir W. Lee Warner is a dry as dust old Anglo Indian and did not know what to talk about except the Indian National Congress which came in for a large share of abuse. Dr. Lennox Browne is a grasping old Surgeon very eager to pounce upon anyone who is unfortunate enough to have a throat inffection. He first spoke tome of H.H., the Raj Kumar of Shahpura and his brother, Free Masonry & Co. but when in the course of conversation he discovered that I was suffering from cough he forgot all other topics of conversation, put me in the victim's (I mean patient's) chair atonce, examined my throat and nostrils and said that though the

doctors who had treated me before I saw him had done all that was neccssary for the throat they did not sufficiently examine my nose and that the real mischief lay in the nose; which in plain Hindustani means:

'Maroon Ghutna phuten Aankhen.'

The treatment he suggested was neither an operation to widen the apertures of the nostrils nor canterize (i.e. burn) those cavities with strong acid so as to widen them. His theory was that the smallness of my nose apertures caused irritation of the throat by obstructing free breathing and diverting the usual secretion into the throat instead of allowing it to flow through the nose. This was too big a pill for me to swallow and I atonce said that if the size of my nostrils had anything to do with my cough I ought to have been suffering from it ever since I was born; but as that was not the case he must seek some other cause of my suffering. He did not like my doubting his skill but tried to conceal his dislike and gave me a long lecture. I must confess that I was half inclined to put myself under his treatment before he finished his discourse but still I could not summon courage enough to undergo an operation in a strange country with no one to attend upon me. While I was thus hesitating he wanted to have another look at my nostrils with a certain instrument and before I could make up mind he had canterized one of my nostrils. It was than too late and I

myself quietly submitted to a similar operation on the other nostril, after which he said two more operations would be necessary. To cut a long story short, I have felt the most excrutiating agency of the cantery three times; now my poor nose is simply lacerated from the inside and I cannot touch it. When I blow there is nothing but clotted blood on my handkerchief. Over and above this a cheque for 20 guineas to the Doctor. I must however say that on all accounts, Browne is one of the cleverest throat doctors in England and many well known people speak very highly of him. Let us therefore hope that he has done the right thing. Of course, I cannot feel any good until the inflammation subsides. It is fort going now and in the course of the week I hope to have the free use of my nose again. Before leaving the subject of Dr. Browne, I may say for H.H.'s information that his chief ambition is to be elected as Honorary Officer of the new Lodge H.H. is going to establish. He has also suggested a name for the Lodge which I consider to be a very appropriate one—It is "The Indian Empire Lodge".

Yet another little story of the doctor before leaving him. The late sur. Morel Mckenzie who attended the late German Emperor for his throat disease was accompanied by our friend Browne. His name is therefore closely asssociated with Mckenzie's and when talking of them both people say "**Moral** Mckenzie

and **immoral** Browne." The reason of this is that the largest class of throat patients comes from among the beautiful actresses of England who flock to him and receive the first and foremost attention without paying a single guinea. He is the Hakim Mahmood Khan of London. I wish I had been an actress, not to save the 20 guineas but to save the great pain I suffered which he would never have given me if I was capable of inspiring a tender feeling in him.

Sir, Mancherjee Bhownuggree is the next personage I saw. I was much pleased with him and we had a long talk about the troubles of Khetri. The interest he showed emboldened me to present him with a copy of the sole and although Parliament is sitting he took the trouble to read it. He thought I had got it drawn up by Sir Edward Clarke the great Advocate General of England and considered it impossible for any native to write it. I must confess my weakness when I say that I did feel flattered for a time. However he has given some very valuable advice and is decidedly of opinion that if Khetri ever can hope to strike with effect, this is the time to do so. He did not like our omitting to ask plainly what we wanted and strongly urged the necessity of our coming forward with our claims. I had some three meetings of upwards of two hours each with him and the sole topic of discussion was Khetri. I cannot give you the full details

of these meetings but the result was that we agreed that a memorial be drafted to the Govt. of India and the 'Note' be made an appendix of it. This memorial should be presented to the Resident with the request that it may be forwarded. The new rules which Jeypore wishes to impose upon us through the Resident (and which I hope have not been consented to by H.H.) afford a capital opportunity for our representation. I think Sir Mancherjee is perfectly right and I am so sure of H.H. approving of the suggestion that I am actually going to draft the memorial on my passage home. I will see Sir Mancherjee again once or twice before I leave.

I have also seen General Law and strange to say he is exactly of the same opinion as Sir Mancherjee is. Both of them agree with me in thinking that the Resident is not so disinterested a friend of Khetri as H,H. takes him to be. The Rules proposed by him show the contrary. In any case we cannot sell ourselves to remain in the good books of the Resident. A copy of the note has been given to General Law also who was quite profuse in unmerited compliments to the writer. He is a nearly old man. When he came to receive me on the ship he said:—

आइये पण्डित साहब, मिजाज शरीफ, हमारे सफ़ीक राजा साहब खेतड़ी का मिजाज कैसा है ? (in urdu script) and then lapsed into the inevitable English

I wrote to Munshi Abdul Karim but he is still at Balmoral with Her Majesty and his reply shows that I cannot see him as he will not be back till long after I have left England.

I am extremely sorry to say that I have lost the letter of introduction to Mr. Powlett (If I am not mistaken) at Surrey. I am not even sure of his name and address. That letter was received by post here and therefore the address is not in my note book or I would have seen him without any introduction. It is very unfortunate and I will never excuse myself of my carelessness. The fact is that for the first time in my life I am travelling unattended and the result is that I leave some useful thing or other where I go. Some are forwarded to me by post, others are not heard of again.

These are all the people I have seen through H.H.'s introduction. Others are not in town. I have of course seen other people besides these and have made some friends among the nobility and gentry of England but have not been able to do much in that direction as it is a very bad time of the year to see any body. London is out of season and all the big people are out. Besides the War is the all absorbing topic of the day and no one cares to listen to anything else.

I am afraid some part of H.H.'s territory must be affected by the famine, This is the time to enlist the sympathy of the Govern-

खेतड़ी नरेश राजा अजीतसिंह जी
स्वामी विवेकानन्द व पं० मोतीलाल नेहरू के सहयोगी

विवेकानन्द जी का एक दुर्लभ चित्र जो खेतड़ी में लिया गया था

eldest Pandit Bansi Dhar Nehru already mentioned is now living in retirement at Muttra (U. P.). The next was Pandit Nandlal Nehru who served as Diwan in the Khetri State (Rajputana) with great credit for some ten years and in that capacity rendered signal services to the Thaggi & Dacoity Department of the British Government from which he received several Kharitan and letters in recognition of his services. On the death of the then Raja he moved to Allahabad and having qualified as a Vakil of the High Court soon made his way to the front ranks of the profession. He died suddenly in the prime of life in 1887.

I was born at Agra on the 6 May 1861 and was educated at the Govt. Schools at Allahabad and Cawnpore and the Muir Central College. I was enrolled as a Vakil of the High Court in 1883 and in January 1896 was educated to the role of Advocates by unanimous resolution of the Chief Justice and the Noable Judges there constituting the Court. In August 1909 I was permitted to appear and plead at the bar of the Judicial Committee of her Majestys Privy Council. In December 1909 I was elected a member of the Legislature Council of his honor the Lt. Governor of the United Provinces by the delegates of the Allahabad Division.

Sd/-
(Motilal)
3-7-10

परिशिष्ट—१०

पं० मोतीलाल नेहरू के हस्तलेख की फोटो प्रति

Short history of my family - submitted to Government of U.P. through Collector in compliance with G.O. No. 162 -IV-109 of 23.2.1910. to Comm. Allahabad Division.

There is no record of the history of the family, all the old papers & documents having been destroyed in the Mutiny of 1857. The oldest living member of the family is my brother Pandit Bansi Dhar Nehru, a Govt. pensioner, who retired from the post of Subordinate Judge of the 1st Grade in these Provinces some 13 years ago and is now 68 years old. He has furnished the following account ~~about~~ the early part of which is mainly based on family tradition.

Pandit Raj Kaul the great grandfather of my grandfather was a Sanskrit and Persian scholar of great eminence in Kashmir. He attracted the notice of the Emperor Farrukh Siyyar when the latter was on a visit to Kashmir and the family migrated to Delhi about ~~[illegible]~~ 1716. Some villages and a house situated on the Canal running through the city were granted in jagir to Pandit Raj Kaul. From the fact of his residence on the Canal (Nehar) he was ~~came to be~~ known as Raj Kaul Nehru and in course of time the word "Nehru" came to be regarded as a surname and was adopted as such by the family.

During the unsettled state of the Empire and the country which followed the assassination of Farrukh Siyyar the family

went through many vicissitudes of fortune the details of which are not known with any certainty. All that is known is that the last holders of the Jagir which had been dwindled into zamindari rights in certain lands were my great grandfather Pandit Mansaram Nehru and his brother Pandit Sahib Ram Nehru.

My grandfather Pandit Lakshmi Narain Nehru was the first Vakil of the "Sarkar Company" at the Imperial Court at Delhi. My father Pandit Ganga Dhar Nehru was Kotwal of Delhi for some time before the mutiny of 1857. He died at the early age of 34 in 1861 some three months before I was born.

On the maternal line my great grandfather was the Diwan of Shamru ki Begam (the Begum of Dyce Sombres.) My grandfather Pandit Shankar Nath Zutshi was a famous man of letters at Delhi and is mentioned by the late Sir Syed Ahmad Khan in his book entitled Asár-us-sanadid at p. 122.

I am the youngest of three brothers. The eldest Pandit Bansi Dhar Nehru already mentioned is now living in retirement at Muttra (U.P.) The next was Pandit Nandlal Nehru who served as Diwan in the Khetri State (Rajputana) with great credit for some ten years and in that capacity rendered signal services to the Thaggi & Dacoity Department of the British Government for which he received several

परिशिष्ट—११

11th September, 1867

IN THE MORNING MOONSHEE HARBAX PANDIT NAND LALL AND SHEONARAIN PAID THEIR RESPECTS TO H.H. H.H. WENT TO PANDIT NAND ALL'S DWELLING AND THERE TOOK BREAKFAST...

परिशिष्ट—१२

Po. Jasrapur
Via. Khetri
(Rajasthan)
15th August 1957.

महामहिम परमादरणीय श्री नेहरू जी,

क्षमा कीजिएगा, मैं आज अपनी एक व्यक्तिगत भेंट के साथ आपकी सेवा में उपस्थित होने की अनुमति प्राप्त करने के लिये यह पत्र भेज रहा हूं। वह भेंट स्वर्गीय पूज्य पंडित मोतीलालजी नेहरू के पत्र की फ़ोटो स्टेट कापी के रूप में होगी। पत्र अब से करीब ५८ वर्ष पुराना, उनकी पहली योरुप यात्रा के समय का स्वलिखित होने के कारण ऐतिहासिक महत्व रखता है। दूसरा पत्र उसके एक वर्ष बाद सन् १९०० ई० का इलाहाबाद से भेजा हुआ है। आपको शायद मालूम होगा कि जिस भूतपूर्व रियासत खेतड़ी के आपके पूज्य ताऊ स्वर्गीय पंडित नन्दलालजी दीवान थे, उसी खेतड़ी के तत्पर-वर्ती विचक्षण प्रतिभा सम्पन्न गुणग्राही प्रगतिशील राजा अजीतसिंह, प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द के एक प्रधान सहायक स्तम्भ थे और आपको यह भी ज्ञात होगा कि पूज्य पंडित मोतीलालजी भी राजा साहब के घनिष्ठ मित्रों में से थे। स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन पर एक नया प्रकाश डालने वाली सामग्री स्वामीजी और उनके गुरुभाइयों के पत्रों के रूप में मैंने खेतड़ी में तलाश की है। अपनी इस खोज के सिलसिले में मुझे स्वर्गीय पण्डित-

मोतीलालजी के पत्र और तत्सम्वन्धी जानकारी प्राप्त हुई है। स्वर्गीय पण्डितजी के दर्शन लाभ करने का महात्मा गांधी के युगारम्भ के समय कलकत्ते की कांग्रेस के अवसर पर मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। खेतड़ी के नाम पर वे वड़े प्रेम से मिले थे, वड़ी कृपा दिखाई थी। अस्तु, प्रस्तुत पत्र स्वर्गीय राजा अजीतसिंह के विश्वस्त मन्त्री मुंशी जगमोहनलाल के नाम लिखे हुये हैं।

मैं आपकी अवगति के लिये दोनों मूल पत्रों की टाइप की हुई प्रतिलिपियां भेज रहा हूं। पत्र अपने विषय के आप परिचायक हैं। मेरा विश्वास है कि मेरी यह व्यक्तिगत भेंट न केवल आपके समक्ष राजस्थान खेतड़ी तथा नेहरू घराने के पूर्व मैत्री सम्वन्ध की स्मृति ताजी वनाये रक्खेगी, वल्कि आपको पूज्य पण्डितजी की पहली विदेश यात्रा की अनुभूति, स्वभाव की विशिष्टता, विनोदशीलता, कलानुराग और अपने प्रति सत्य स्नेह के मूर्तिमान उदाहरणों के रूप में सदा प्रेरणा देती रहेगी।

आपकी वड़ी कृपा होगी, यदि आप मेरी भेंट स्वीकार करने के लिये अपनी सुविधा की तारीख और समय निश्चित कर मुझे पत्र द्वारा सूचित करेंगे।

कष्ट के लिये क्षमा प्रार्थी।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम शताब्दी महोत्सव की खुशी में राष्ट्र की समृद्धि-वृद्धि की कामना के साथ—

सेवा में
श्री जवाहरलालजी नेहरू
भारत राष्ट्र के प्रधानमंत्री
नई दिल्ली

आपका—
झावरमल्ल शर्मा
(इतिहासान्वेषक)
इतिहासानुसन्धान कार्यालय
जसरापुर Via खेतड़ी
(राजस्थान)

Motilal Nehru

Jawaharlal Nehru

Three Generations of Congress Presidents

Indira Gandhi

कांग्रेस अध्यक्ष : तीन पीढ़ियां
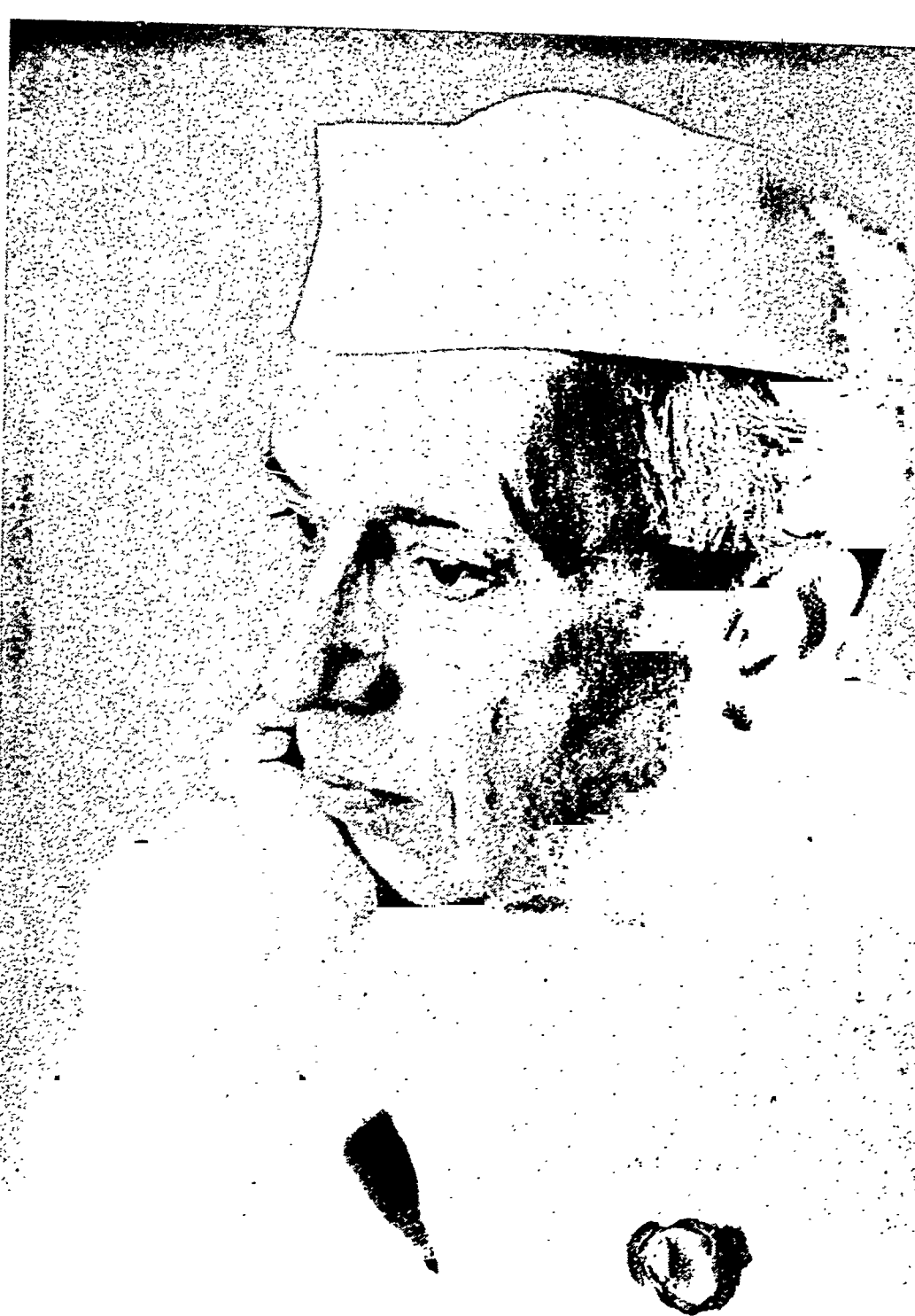
करोड़ों भारतीयों के हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू

२-१२-१९८० मार्गशीर्ष वदि (कृष्ण पक्ष) मंगलवार संवत् २०३७ प्रधान मन्त्री जी के निवास [illegible]
[illegible] के ग्रंथों को भेंट करने के अवसर पर लिया गया आटो ग्राफ।

पं० जवाहरलाल नेहरू राजस्थानी साफा पहिने हुये।

ऊंट पर सवारी करते हुये पं० नेहरू
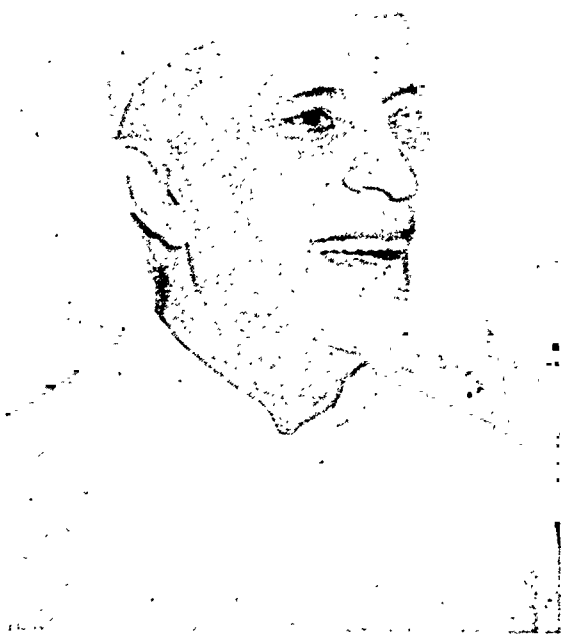
प्रसन्न मुद्रा में पं० नेहरू

एक साथ

सर्व श्री सेठ घनश्यामदास बिड़ला, पं० नेहरू, बसन्त कुमार बिड़ला, लक्ष्मी निवास बिड़ला, कृष्ण कुमार बिड़ला
(अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पिलानी शिक्षण-संस्थान में)

पं० झावरमल्ल शर्मा (अरविन्द के सौजन्य से)

अनुक्रमणिका

★

संदर्भ-सूची

हिन्दी

१. आदर्श नरेश, झावरमल्ल शर्मा
२. इन्दु से प्रधान मंत्री, कृष्णा हठीसिंग
३. खेतड़ी का इतिहास, झावरमल्ल शर्मा
४. नेहरू जी राजस्थान में, जन-सम्पर्क निदेशालय, राजस्थान, जयपुर
५. पूर्व-आधुनिक राजस्थान, डाक्टर रघुवीरसिंह
६. मुरासलात खेतड़ी (लीथो), मुंशी ज्वालासहाय
७. मेरी कहानी, जवाहरलाल नेहरू
८. राजस्थान के किसानों की भारत-दर्शन यात्रा, भंवरलाल गोलीमार, जयपुर
९. वाकआत रजिस्टर, खेतड़ी
१०. स्वामी लक्ष्मीराम का जीवन-चरित्र, मंगलदास स्वामी
११. हरिभाऊ उपाध्याय अभिनन्दन ग्रन्थ
१२. हिन्दुस्तान की कहानी, जवाहरलाल नेहरू

पत्र-पत्रिकाएं

१. नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट), अगस्त, १९५४, बम्बई
२. दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
३. दैनिक लोकवाणी, जयपुर
४. दैनिक राजस्थान पत्रिका, जयपुर
५. दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर
६. दैनिक अमर राजस्थान, जयपुर।

ENGLISH

1. Annals and Antiquities of Rajasthan, James Tod.
2. Autobiography of the Chief of Khetree, Raja Fateh Singh (1869 A.D.).
3. Discovery of India, Jawahar Lal Nehru.
4. Kamala Nehru, An Intimate Biograpny, Promilla Kalhan.
5. Moti Lal Nehru Birth Centenary Souvenir. 1961.
6. Rajasthan, A Decade of Reconstruction.
7. Sixty Years of Congress, 1946.
8. The Home Coming of Gadia Lohars, Directorate of Public Relations. Rajasthan, Jaipur, 1955.
9. The Nehrus, B.R. Nanda.
10. Nehru's letters to his Sister, Krishna Nehru Huthee Sing.
11. Treaties, Engagements and Sanads Vol. VIII (1909 A.D.). (States in Rajpootana).
12. We Nehrus, Krishna Nehru Hutheesing. (1968).